विश्वपूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि-धनचन्द्रसूरि-भूपेन्द्रसूरि,
यतीन्द्रसूरि पादपद्मेभ्यो नम

सूक्ति-संग्रह

(सान्वय-संक्षिप्तव्याख्या-हिन्दी अर्थसह)

लेखक

स्व पू पा व्याख्यानवाचस्पति यतीन्द्रसूरीश्वरान्तेवासी

मुनिवर श्रीलक्ष्मणविजय

'शीतल'

उपदेशक

मुनि श्रीलेखेन्द्रशेखरविजय

'शार्दूल'

प्रकाशक

श्रीयतीन्द्रसूरि जैन वाचनालय, आलीराजपुर (म प्र)

प्राप्ति स्थान

१ श्रीयतीन्द्रसूरि जैन वाचनालय
मु. पो. आलीराजपुर (म. प्र.)
वाया-मेघनगर

❀

२ महेता रायचन्द्र मनोहरमल
बड़ी प्याऊ के सामने गणेश चौक
भीनमाल जिला-जालोर [राज०]

❀

श्रीवीर सम्वत २५०३
राजेन्द्र सूरि सम्वत ७१
विक्रम सम्वत २०३४
प्रति १०००
मूल्य २ रुपये

❀

मुद्रक—
ॐ प्रकाश डाँगी
श्रीराजेन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस
श्रीराजेन्द्र चौक, निम्बाहेड़ा (राज०)

परम पावन, पूज्य गुरुदेव



श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.

प्रातः स्मरणीय आबाल ब्रह्मचारी



आचार्यदेव श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

मुनि श्रीलेखेन्द्रशेखरविजय 'शार्दूल'
के सदुपदेश से

सुक्ति संग्रह पुस्तक के द्रव्य सहायको की नामावली

१ समदडी निवासी शा मिश्रीमल केसाजी चौपडा की स्वर्गीय धर्मपत्नी की पुण्य स्मृति मे ।

२ वेदमुता छगनराज भीमाजी, रेवतडावाले (राज०)

३ वेदमुता किशोरीलाल भीमाजी, रेवतडावाले

४ शा. सायरमलजी छोगाजी, मेगलवा (राज०)

५ शा पुखराजजी सरूपाजी, कोरावाले (राज०)

६ शा. हिराचदजी समरथमलजी, दाधालवाले (राज)

७ शा मनोहरलाल सावलचन्दजी बेटापोता कमनाजी

८ शा घेवरचद सुरजमल एण्ड क, बेगलोर

९ शा सरेमलजी दरगाजी, दाधाल (राज)

१० राजेन्द्र सेरस कारपोशन, मदुराई न १

११ विजय मेटल कार्पोरेशन, मद्रास न ३

१२ शा सुमेरमलजी सोनाजी, पाथेडी (राज०)

१३ शा मोहनलाल वस्तोमल, तिलोड़ा (राज)

१४ पारिख टेक्स टाईल्स, बेगलोर

१५ जितमल एण्ड कम्पनी, जालोर (राज०)

१६ शा. सोनमल पागाजी, मेंगलवा (राज०)

१७ शा. छगनराज हजारीमल, पासाणा (राज०)

१८ शा. उत्तमचन्द भँवरलाल एण्ड कम्पनी, मैसूर

१६ शा. उमेदमल प्रतापजी, मेंगलवा (राज०)

२० शा. सायरमल आदाजी, वालोतरा (राज०)

२१ शा. शंकरलालजी गुमानजी, पादरु (राज०)

२२ शा. विमलचंद गौतमचंद सुमेरमल (राज०)

२३ शा. उत्तमचंद दगाजी, मेंगलवा (राज०)

२४ शा. पुखराज चम्पालाल बाबुलाल चन्दनमल बेटा पोता पुनमचन्दजी, दाधाल

२५ बी. ताराचंद, भारतनगर बम्बई नम्बर ७

२६ चन्द्रप्रभु जैन नवयुवक मंडल, वागोड़ा (राज०)



स्व पू पा व्याख्यानवाचस्पति
श्री यतीन्द्रसूरीश्वरान्तेवासी



मुनिवर श्रीलक्ष्मणविजयजी
'शीतल'

दो शब्द

गुरु यतीन्द्र के पद पंकज में प्रथम किरण अर्पित करता हूँ ।
साहित्य सृजन की पगडंडी पर प्रथम कदम आज धरता हूँ ॥
आशीर्वाद ले गुरुदेव का इस राह पर निरंतर बढ़ता रहूँ ।
नई नई किरणें लेकर मैं साहित्य की सीढ़ी चढ़ता रहूँ ॥

प्रस्तुत "सूक्ति संग्रह" पुस्तक मेरा प्रथम प्रयास है । संस्कृत श्लोकों का अन्वय, संक्षिप्त व्याख्या तथा हिन्दी में अर्थ उपदेशी श्लोकों को समझने में पाठकों को सहायक सिद्ध होगी इसी आशय से यह टीका तैयार की है । श्रीयतीन्द्र किरणावली की प्रथम किरण के रूप में यह पुस्तक आपके हाथों में है । कृपया इस पर अपने विचार अवश्य लिखकर भिजावें ताकि भविष्य में उन विचारों को ध्यान में रखा जाकर लेखन कार्य किया जा सके ।

पूज्य गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति श्रीयतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज जिनकी कृपा से मैं इस योग्य बना कि कुछ लिख सकूँ, यह प्रथम किरण उनके चरणों में अर्पित करते हुए मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूंगा भविष्य में भी इसी तरह अलग अलग विषयों पर नई किरणें गुरु चरणों में अर्पित कर सकूँ ।

अंत में मैं उन सभी द्रव्य सहायकों का भी आभारी हूँ जिनने इस पुस्तक को प्रकाशित कराया । साथ ही पंडित श्री शिनिकण्ठजी शास्त्री का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक का सम्पादन कार्य किया ।

मुनि लक्ष्मणविजय 'शीतल'

विषयानुक्रमणिका

सम्पादकीय वक्तव्य

मुनि श्री लक्ष्मणविजयजी "शीतल" म सा का जन्म म प्र के झाबुआ जिले के अन्तर्गत आलीराजपुर मे हुआ जो उस समय एक पृथक् राज्य की राजधानी थी। वि स १९९३ चैत्र शुक्ला ११ के दिन एक सम्पन्न परिवार मे आपका जन्म हुआ।

आपके पिता का नाम शा श्री रतीचन्दजी और माता का नाम धनीबाई था। उस समय आपका नाम अमोलकचन्द था। प्रारम्भिक शिक्षा आपकी आलीराजपुर मे ही हुई और कुछ सयाने होने पर आप अपने पिता के कपडे के व्यापार मे सहयोग देने लगे।

उन्ही दिनो आलीराजपुर के समीप ही सुप्रसिद्ध जैन तीर्थ श्री लक्ष्मणी मे राजेन्द्रसूरीश्वरजी म सा के सुयोग्य शिष्यरत्न बृहत्तपागच्छीय के महान् तेजस्वी आचाय श्री यतीन्द्रसूरिजी म सा पधारे, जिन्होने उस तीर्थ का पुनरुद्धार किया था।

आप भी उनके सदुपदेश सुनने एवं दर्शन के लिए वहां पहुंचे और उनके प्रभाव तथा तेजस्विता से प्रभावित होकर घर-बार कुटुम्ब परिवार सब का त्यागकर उनके साथ हो गये।

वि. सं. २०१९ आषाढ़ कृष्णा ११ दशी के शुभ दिन सुप्रसिद्ध श्रीमोहनखेड़ा जैनतीर्थ मे आपने दीक्षा ग्रहण की थी। लक्ष्मणीतीर्थ की स्मृति मे ही श्रीलक्ष्मणविजय के नाम से नामकरण कर दिया गया उस समय आपकी अवस्था १९ वर्ष की थी तभी से मुनि श्री लक्ष्मणविजय "शीतल" के नाम से आपकी प्रसिद्धी हो गई।

साधु होने के पश्चात् कुछ वर्षों तक वे अन्य मुनियों के साथ ही अपने गुरुदेव श्रीयतीन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की सेवा में रहे जहाँ आपके शिक्षण की व्यवस्था की गई। श्रीगुरुदेव के स्वर्गवास के पश्चात् आपकी शिक्षण व्यवस्था में बाधा उपस्थित हो गई किन्तु आपकी पढ़ने की अभिरुचि थी अतः आप जहाँ तक सम्भव हो सका पालिताणा तीर्थ और अहमदाबाद आदि स्थानों पर अपनी अन्त.प्रेरणा से लगन के साथ संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते रहे किन्तु समुचित व्यवस्था और सहयोग के अभाव में आप इच्छानुसार अध्ययन नही कर सके और आपकी इच्छा अतृप्त ही रही।

अब आपने स्वतन्त्ररूप से विचरण करते हुए धर्मोपदेश द्वारा धर्म प्रचार करने का निश्चय किया और पद यात्रा करते हुए स्थान-स्थान पर धार्मिक जागृति करने लगे। विद्या प्रेमी होने के नाते बालकों को सदा विद्याध्ययन की प्रेरणा देते

रहते। आपने कई दिन किन्तु मेधावी छात्रो को अध्ययन हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करवाकर उन्हे अध्ययनार्थ उत्साहित किया।

अपने उपदेश द्वारा सयम पथ के पथिक बनने की इच्छा वाले कतिपय योग्य व्यक्तियो की दीक्षा व्यवस्था करवाकर आपने उन को दीक्षा दी। अभी तक आप की दीक्षा मे पांच दीक्षा हो चुकी है, और छट्ठी दीक्षा का निश्चय हो चुका है। महान् त्यागमय जीवन बिताने वाले मुनि श्रीविद्वच्चन्द्रविजयजी अर्थात् अस्थिर मुनि आपके ही सुयोग्य शिष्य बने थे जिन का २-३ वर्ष पूर्व न्यूडीसा उ० गुजरात मे स्वर्गवास हो गया।

इस समय आपके साथ आपके सुयोग्य शिष्यरत्न मुनि श्रीलेखेन्द्रशखरविजय "शार्दूल" हैं जो अभी नवयुवक ही हैं। इनको सभी तरह से सहयोग एव विद्वान् बनाने की आपकी हार्दिक उत्कण्ठा है इसीलिए आपने इनके सतत् अध्ययन की व्यवस्था की है।

वि० स० २०३१ जेठ शुक्ला दशमी (गगा दशमी) के पुण्य पर्व पर जब मैं मन्दसौर (म प्र) से अवतिका आया तो उ हीं दिनों आप भी विचरण करते हुए उज्जैन पधारे। वहा आप राजेन्द्रसूरिज्ञान मन्दिर मे विराजमान थे, तभी मेरी सहसा आपसे भेंट हो गई। आपको एक विद्वान् की आवश्यकता थी ही वार्तालाप के प्रसग मे आपने मुझ से अनुरोध किया जिसे मैं टाल नहीं सका। आपका चातुर्मास नागदा जक्शन

म. प्र. में निश्चित हो चुका था और वहीं आपकी निगाहों में मुनि लेखेन्द्रशेखरविजय "शार्दूल" म. का अध्ययन नियमित रूप से प्रारम्भ हो गया।

पौने तीन वर्ष की अवधि में श्रीलेखेन्द्रशेखरविजयजी ने अपनी अध्ययनशीलता का अच्छा परिचय दिया।

युग पुरुष श्रीसोमप्रभसूरीश्वरजी म. सा. द्वारा रचित "सिन्दूर प्रकरण" नामक एक बहुत ही सुन्दर सुप्रसिद्ध और उपदेश प्रद खण्ड काव्य के अन्त में "सूक्ति संग्रह" नामक एक बहुत ही उपदेश प्रद और संग्रहणीय श्लोकों का संग्रह है। जिसमें धर्मोपदेश, धर्मलाभ, धर्मप्रभाव आदि १६ विषयों पर ११४ संग्रहीत श्लोक है जो बहुत ही शिक्षा प्रद कल्याणकारी और मनन करने योग्य हैं।

श्रीलेखेन्द्रशेखरजी के अध्ययन के समय 'सिन्दूर प्रकरण' के श्लोकों का पदच्छेद विभक्त्यर्थ अन्वय तथा अर्थ समझाने की प्रक्रिया के साथ उस प्रकरण के समाप्त होने पर जब सूक्ति संग्रह का अध्ययनाध्यापन प्रारम्भ हुआ तो मन में यह विचार आया कि महाराज के अध्ययन का स्तर अब थोड़ा ऊपर उठ गया है इसलिए इन्हें अब संस्कृत का अर्थ संस्कृत में ही समझाना उचित होगा जिससे कि इनकी वुद्धि का विकास हो और इनमे शनैः२ अपठित श्लोकों का अर्थ स्वयं करने की क्षमता आने लगे।

मूलश्लोकों का पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थ अब वे स्वयं ही करने लगे अन्वय के पश्चात् पदों का समास तथा मूल

शब्दो का संस्कृत मे ही समानार्थक शब्दो के प्रयोग के साथ अर्थ समझाने की प्रक्रिया का प्रारम्भ कर हिन्दी मे से उनका अर्थ विशद् किया जाने लगा।

अभ्यास की दृढता के लिए इसी प्रकार कतिपय मूल श्लोक अन्वय, व्याख्या तथा हिन्दी मे उनका अर्थ भी लिखाया जाने लगा मूल श्लोको का यद्यपि सिन्दूर प्रकरण के श्लोको का अन्वय और हिन्दी अर्थ सहित संस्करण तो प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु उसके साथ ही विभिन्न ग्रन्थो से संगहित "सूक्ति संग्रह" के श्लोको की अभी तक कोई पुस्तक देखने मे नही आई।

अध्ययन अध्यापन का यह क्रम मुनिराज श्रीलक्ष्मण-विजयजी शीतल म० सा० को बहुत ही समीचीन लगा।

उनके मन मे यह भावना उदित हुई कि यदि इस सूक्ति संग्रह का एक पृथक् ही संस्करण इस तरह का प्रकाशित हो कि जिसमे मूल श्लोक संस्करण संस्कृत मे संक्षिप्त व्याख्या एव हिन्दी अर्थ भी रहे तो, यह उपयोगी एव ज्ञान वर्द्धक होगा ही साथही संस्कृत का अर्थ न समझने वाले उन सज्जनो के लिए भी लाभदायक होगा जो कि सूक्ति संग्रह के श्लोको के अर्थ को जानने के इच्छुक हो और उनके उपदेश से लाभ उठना चाहते हो।

सिन्दूर प्रकरण का क्यो कि सिन्दूर प्रकरण के मूल श्लोको का अन्वय और हिन्दी अर्थ सहित एकाधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके है। किन्तु उसके साथ ही विभिन्न ग्रथो से

संग्रहीत सूक्ति संग्रह के श्लोकों की अभी तक कोई टिका देखने में नहीं आई ।

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इन्होंने परिश्रम के साथ इस प्रकार का यह संस्करण तैयार किया जिसे आपके हाथों में प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

सचमुच ही मुनिराज का यह प्रयास उनकी संस्कृत के प्रति अभिरुचि और लोकहित की भावना का द्योतक है।

आपका यह अभिनव प्रयास है जो अवश्य ही स्तुत्य एवं स्वागतर्ह है। आशा है श्रीमुनिराज ऐसे और की लोकोपयोगी ग्रंथों के लेखन और प्रकाशन में सतत् सचेष्ट रहेंगे जिससे कि और अधिकाधिक लोगों का हित हो सके। मुनिराज के इस लोकोपयोगिता लेखन एवं प्रकाशन के लिए मैं उनका अभिनन्दन करता हुआ आप महानुभाओं से भी अनुरोध करता हूं कि आप इस लोकहितकारी ग्रंथ का अधिकाधिक प्रचार और प्रसार करने का प्रयत्न करे जिससे कि अधिकाधिक भाई बहिनों को लाभ पहुंच सके और आप इस श्रेय के भागी बन सकें।

इस शुभ भावना के साथ यह ग्रंथ आप सज्जनों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए आज मुझे बड़ा ही हर्ष हो रहा है।

शिव भवन, जीवागंज, विनीत

मन्दसौर (म. प्र.) शितिकण्ठ शास्त्री

अक्षय तृतीया सं. २०३४ साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ

॥ ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथाय नम ॥

॥ दादा गुरुदेव प्रभु श्रीराजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नम ॥

सूक्ति संग्रह



टीकाकार

परम पूज्य गुरुदेव श्रीयतीन्द्रसूरि शिष्य

मुनि लक्ष्मणविजय 'शीतल'

"संस्कृत साहित्यरत्न"

मंगलाचरण

लोकोद्धार समर्थास्ताः प्रभोः पादारविन्दयोः ।
पांसवः पार्श्वनाथस्य, श्रेयसे सन्तु वः सदा ॥१॥

"लोकोद्धार करने में समर्थ प्रभु श्री पार्श्वनाथ के चरणारविन्दों की वे प्रसिद्ध धूलि सदा आपके कल्याण के लिये होवें" ।

'संसार दावानल दग्ध जीवान्'
समुद्दधारामृतवर्षया यः ।
वाक्रूपया तं हि यतीन्द्रवर्य्यं ।
राजेन्द्रसूरिं सततं नमामि ॥

"जिसने संसार रूपी दावानल से दग्ध जीवों का अपनी वाणी रूपी (उपदेश) अमृत वर्षा से उद्धार कर दिया, उन यतीन्द्रवर्य राजेन्द्रसूरीश्वरजी की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ" ।

१ धर्मोपदेश

पूज्यपूजा दया दान, तीर्थयात्रा जपस्तप· ।
श्रुत परोपकारश्च, मर्त्यजन्मफलाष्टकम् ।।१।।

अन्वय –

पूज्यपूजा, दया, दान, तीर्थयात्रा, जप तप परोपकार च मर्त्यजन्म फलाष्टकम् ।

सक्षिप्त व्याख्या –

पूजयितु योग्या पूज्या तेपाम् पूजा सत्कार दया घ्रणा दान, वितरण, तीर्थयात्रा, जप तप. श्रुत शास्त्रश्रवणम् परोपकारश्च फलानाम् अष्टक फलाष्टक मर्त्यस्य मनुष्यस्य जन्म मर्त्यजन्म तस्य फलाष्टक मर्त्य-जन्मफलाष्टक ।

अर्थ –

पूज्य पुरुषो की पूजा, प्राणीमात्र पर दया, सत् पात्रो मे दान, तीर्थो की यात्रा, जप, तप, शास्त्रो का अध्ययन व श्रवण और दूसरो का उपकार करना मनुष्य जन्म के ये आठ फल है ।

दानं सुपात्रे विशदं च शीलं,
तपो विचित्रं शुभभावना च ।
भवार्णवोत्तारणसत्तरण्डं,
धर्मं चतुर्धा मुनयो वदन्ति ॥२॥

अन्वय :–

सुपात्रे दानं, च विशदं शीलं विचित्रं तपः शुभ भावना च मुनयः भवार्णवोत्तारण सत्तरण्डं धर्मं चतुर्धा वदन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

सुष्ठु पात्रे सुपात्रे सत्पात्रे दानं विशदं, शुभ्रं शीलं विचित्रं तपः च शुभभावना शुभा चासौ भावना शुभ-भावना मुनयः ऋषयः भवः संसार एव अर्णवः समुद्रः तस्य च उत्तारणे सत्तरण्डम् दीर्घनौका धर्मं चतुर्धा चतु.प्रकारं वदन्ति कथयन्ति ।

अर्थ :–

सुपात्र में दान, निर्मल यश, विचित्र तप, शुभभावना इस प्रकार मुनि संसार रूपी समुद्र से तारने के लिए उत्ताम जहाज रूपी धर्म को चार प्रकार का कहते है ।

जिन भवन जिन विम्ब,
जिनपूजा जिनमत च य कुर्यात् ।
तस्य नरामरशिवसुख,
फलानि करपल्लवस्थानि ॥३॥

अन्वय –

य जिनभवन जिनविम्ब, जिनपूजा, जिनमत च कुर्यात् तस्य नरामरशिवसुख फलानि करपल्लवस्थानि (भवन्ति)

सक्षिप्त व्याख्या –

यो मनुष्य जिनानाम् भवन जिनभवन तीर्थ कराणाम् भवन मन्दिर जिनानाम् तीर्थ कराणाम् बिम्ब प्रतिमा जिनानाम् पूजा अर्चनम् जिनानाम् मत धर्म कुर्यात् तस्य नरस्य जनस्य अमरशिवसुखस्य फलानि कर एव पल्लव तस्मिन् तिष्ठन्ति इति करपल्लवस्थानि हस्त गतानि भवन्ति ।

अर्थ –

जो मनुष्य जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनपूजा और जिनमत का पालन करता है उस मनुष्य के अमर शिवसुख फल हस्तगत हो जाते हैं ।

बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च,

देहस्य सारं व्रतधारणं च ।

अर्थस्य सारं किल पात्रदानं,

वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम् ॥४॥

अन्वय :-

नराणाम् बुद्धेः फलं तत्त्व विचारणं च देहस्स सारं व्रत धारणं अर्थस्य सारं किल पात्र दानं च वाचः फलं प्रीतिकरं (भवति)

संक्षिप्त व्याख्या :-

नराणाम् मनुष्याणाम् बुद्धेः मतेः फलं तत्त्वम्य तत्त्व-पदार्थस्य विचारणं चिन्तनम् च देहस्य शरीरस्य सारं मूलं व्रतानाम् ब्रह्मचर्यादीनाम् धारणं पालनं अर्थस्य धनस्य सारं फलं पात्रेषु सुपात्रेषु दानं वितरणम् किल निश्चय रूपेण च वाचः वाण्याः फलं सारं प्रीति-करं प्रेमोत्पादनम् (अस्ति)

अर्थ :-

मनुष्यों की बुद्धि का फल तत्त्व का विचार करना और शरीर का फल ब्रह्मचर्यादि व्रतों का धारण करना एवं धन का सार सत् पात्रों में दान देना और वाणी का फल परस्पर में प्रेम उत्पन्न होना है ।

जीवदया जिणधम्मो, सावयजम्मो गुरूण पयभत्ती ।
एअ रयणचउक्क, पुण्णेहिं विणा न पावन्ति ॥४॥

जीवदया जिनधर्म , श्रावकजन्म गुरूणा पदभक्ति ।
एतद् रत्नचतुष्क, पुण्यैविना न प्राप्नुवन्ति ॥५॥

अन्वय –

जीवदया जिनधर्म श्रावकजन्म, गुरुणाम्, पदभक्ति, एतत् रत्न चतुष्क (जना) पुण्यै, विना न प्राप्नुवन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

जीवेषु, प्राणिषु दया कृपा, जिनस्य धर्म श्रावकस्य जैन धर्म पालकस्य जन्म, गुरुणाम् पचमहाव्रतपालकाचार्यादि पूज्य पुरुषाणाम् पादयो चरणयो भक्ति एतत् (इद) रत्नानाम् चतुष्कम् रत्नचतुष्ट (जना. नरा) पुण्यै. सत् कर्मभि विना न प्राप्नुवन्ति लभन्ते ।

अर्थ –

जीवो पर दया, जैनधर्म, श्रावक कुल मे जन्म, गुरुजनो के चरणो मे भक्ति ये चारो रत्न मनुष्य पुण्यो के विना प्राप्त नही कर सकते हैं ।

दिने दिने मंजुल मंगलाली,

सुसंपदः सौख्यपरम्परा च ।

इष्टार्थ सिद्धिर्बहुला च बुद्धिः,

सर्वत्र सिद्धिः सृजतां सुधर्मम् ॥६॥

अन्वय :–

सुधर्मम् सृजतां दिने दिने मंजुल मंगलली, सुसंपदः सौख्य परम्परा, इष्टार्थ सिद्धिः च बहुला बुद्धिः च सर्वत्र सिद्धिः (भवति)

संक्षिप्त व्याख्या :–

सुधर्मम् सृष्ठु धर्मं सुधर्मम् सद्धर्मं सृजतां कुर्वताम् (मनुष्याणाम्) दिने दिने प्रतिदिनं मंजुलानाम् मनोहराणाम् मंगलानाम् आनन्दानाम् आली पक्तिः सुष्ठु सपदः सुसंपदः उत्तमसंपत्तयः सौख्यस्य परम्परा निरन्तरं सुख प्राप्तिः इष्टाश्चते अर्थाः तेषाम् विपुला बुद्धिः मतिश्च सर्वत्र सिद्धिः कार्य–साफल्यम् (भवति) ।

अर्थ :–

श्रेष्ठ जैन धर्म का पालन करने वाले मनुष्यों के प्रति दिन सुन्दर मंगलों की प्राप्ति, उत्तम संपत्तियां निरन्तर सुखों की प्राप्ति, अभीष्ट सिद्धि, निपुण बुद्धि और सर्वत्र सिद्धि प्राप्त होती है ।

पूजा जिणिंदे सुरुई वएसु,

जत्तो अ सामाइ अ पोसहेसुं।

दाण सुपत्ते सयण सुतित्थे,

सुसाहुसेवा सिवलोअमग्गो॥७॥

पूजा जिनेन्द्रे सुरुचिव तेषु

यत्नश्च सामायिक पौषधेषु।

दान सुपात्रे श्रयण सुतीर्थे,

सुसाधुसेवा शिवलोकमार्गः ॥७॥

अन्वय –

जिनेन्द्रे पूजा, व्रतेषु सुरुचि, सामायिक पौषधेषु यत्नः सुपात्रे दान सुतीर्थे श्रवण, च सुसाधु सेवा (अयम्) शिवलोक मार्ग अस्ति।

संक्षिप्त व्याख्या –

जिनेन्द्र जिन भगवति पूजा अर्चा व्रतेषु ब्रह्मचर्या दिव्रतेषु सुरुचि सामायिकमष्ट च त्वारिंशन्मिनिट पर्यन्तम् पापाचरणत्याग पूर्वक धर्माचरण मात्मचिन्तन च पौषधमहोरात्रपर्यन्त पापाचरण त्याग पूर्वक आत्मचिन्तन धर्माचरण सामायिकानि च पौषधानि च सामायिक

पौषधानि तेषु यत्नः प्रयत्नः सुपात्रे सत् पात्रे दानं धनादि पदार्थानाम् वितरणं सुतीर्थ उत्तम तीर्थस्थाने श्रयणं आश्रयग्रहणं सुसाधूनाम् सुमुनीनाम् सेवा (अयम्) शिवलोकस्यः मोक्षस्य मार्गः पन्थाः अस्ति ।

अर्थ :-

जिनेन्द्र प्रभु की पूजा, व्रतों में उत्तम रुचि, सामायिक और पौषध में प्रयत्न, सुपात्रों में दान उत्तम तीर्थ में निवास, साधुओं की सेवा यह मोक्ष का अचल मार्ग है ।



२ धर्मफल

धर्मो महामङ्गलमङ्ग भाजा,
धर्मो जनन्युद्दलिताखिलार्त्तिः ।
धर्मो पिता चिन्तितपूरितार्थो,
धर्मं सुहृद्वर्द्धित नित्यहर्षं. ॥१॥

अन्वय –

धर्मं अङ्गभाजाम् महामगल धर्मं उद्दलिताखिलार्त्ति.
जननी धर्मं चिन्तितपूरितार्थं पिता धर्मं. वर्द्धितनित्य-
हर्षं सुहृद् अस्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

धर्मं. पुनः अङ्गानि अवयवान् भजन्ति ते अङ्गभाज.
तेषाम् शरीर धारिणाम् महामगल महच्च तत् मगलं
महामगल, धर्म. पुनः उद्दलिता विनाशिता अखिला
सम्पूर्णा आर्तिः पीडा येन सः उद्दलिताखिलार्त्ति एव
भूता जननी माता धर्मं सन्तानं निखिल विनाशिता.
[illegible] [illegible]. धर्मं. [illegible] येन स चिन्तितपूरि-
तार्थं [illegible] [illegible] पिता [illegible] धर्मेण पुत्रादि

इत्कार्यं वर्द्धितः वृद्धि नीतः नित्यम् हर्षः प्रसन्नता येन सः वर्द्धित नित्यहर्ष एवं भूतः सुहृद् मित्रम् अस्ति ।

अर्थ :-

धर्म प्राणियों का महामंगल करने वाला है, धर्म सम्पूर्ण दुःखों को दूर करने वाली माता है, धर्म विचारे हुए सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला पिता है और धर्म नित्य हर्ष को बढ़ाने वाला मित्र है ।



आरोग्यभाग्याभ्युदयप्रभुत्व,

सत्त्व शरीरे च जने महत्त्वम् ।

तत्त्व च चित्ते सदने च सपत्,

सपद्यते पुण्यवशेन पुंसाम् ॥२॥

अन्वय –

आरोग्य भाग्याभ्युदय प्रभुत्व, शरीरे, सत्त्व, जने च, महत्वम् चित्ते, तत्वम्, च सदने, सपत्, पुमाम् पुण्य-वशेन, सपद्यते ।

सक्षिप्त व्याख्या –

आरोग्य निरोगता भाग्याभ्युदयो भाग्योदय प्रभुत्व प्रभुता आरोग्य भाग्याभ्युदय. प्रभुत्व शरीरे देहे सत्व शक्ति जैने मनुष्य समूहे महतो भावो महत्व महानता चित्ते चेतसि च तत्व तत्वचिन्तनम् च सदने गृहे सपत् सपत्ति एतत् सर्वम् पुसाम् मनुष्याणाम् पुण्यस्य वशेन पुण्यवशेन धर्माचरणेन सपद्यते भवति ।

अर्थ –

आरोग्य, भाग्योदय, प्रभुता, शरीर मे शक्ति मनुष्यों मे महत्व चित्त मे तत्व विचार और घर मे सपत्ति यह सब मनुष्यो के पुण्य के वश से होती है ।

धर्मोऽयं धनवल्लभेशु धनदः कामार्थिषुकामदः;
सौभाग्यार्शिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्शिनां पुत्रदः ।
राज्यार्थिवपि राज्यदः किमथवा नानाविकल्पैर्नृणां;
तत्किं? यन्न करोति किं च कुरुते स्वर्गापवर्गावापि ॥३॥

अन्वय :–

अयम् धर्मः धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिषु कामदः सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः अपरं किं पुत्रार्थिनां पुत्रदः राज्यार्थिषु अपि राज्यदः अथवा नानाविकल्पैः किं नृणाम् तत् किं यत् न करोति, किं च स्वर्गापवर्गौ अपि कुरुते ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

अयम् एषः धर्मः सुकृतं धनस्य द्रव्यस्य वल्लभेषु प्रियेषु धन वित्तम् ददाति यच्छति इति धनदः कामान् अर्थिषु कामार्थिषु भोगाभिलाशिषु कामान् ददातीति कामदः भोगप्रदः सौभाग्यस्य अर्थिषु सौभाग्यार्थिषु तत् सौभाग्यं प्रददातीति तत्प्रदः अपरं किं अन्यत् किं पुत्राणाम् अर्थिनाम् पुत्रार्थिनाम् सुतकामुकानाम् पुत्रान् ददातीति पुत्रदः राज्यस्य अर्थिषु राज्यमिच्छसु राज्यदः

राज्यदायक अथवा नाना विकल्पैरनेक कल्पनाभि किं नृणाम् मनुष्याणाम् तत् कियत् धर्मः नकरोति अर्थात् सर्व करोतीत्यर्थ किञ्च स्वर्गश्चापवर्गश्च तौ स्वर्गापवर्गौ स्वर्गमोक्षौ अपि कुरुते ददातीत्यर्थ. ।

अर्थ -

यह धर्म धन जिन को प्रिय है, ऐसे मनुष्यो को धन देता है, भोगो की इच्छा वालो को भोग देता है, सौभाग्य की कामना वालो को सौभाग्य देता है और पुत्र चाहने वालो को पुत्र देता है, राज्य की इच्छा वालो को राज्य देता है, अथवा अनेक कल्पनाओ से क्या मनुष्यो के वह क्या है जिसे धर्म नही कर सकता है दे सकता है, अर्थात् सभी कर सकता है अधिक क्या स्वर्ग और मोक्ष भी करता है अर्थात् देता है ।



धर्माज्जन्म कुले शरीरपटुता सौभाग्यमायुर्बलं;
धर्मेणैव भवन्ति निर्मलयशोविद्यार्थ संपत्तयः ।
कान्ताराच्च महाभयाच्च सततं धर्मः परित्रायते;
धर्मः सम्यगुपासितो भवति हि स्वर्गापवर्गप्रदः ।।४।।

अन्वय :-

धर्मात् कुलेजन्म, शरीरपटुता, सौभाग्यं आयुः बलं भवन्ति । धर्मेण एव निर्मलयशो विद्यार्थसंपत्तयः भवन्ति । धर्मः कान्तारात् च महाभयात् च परित्रायते हि सम्यग् उपासितः धर्मः स्वर्गापवर्गप्रदः भवंति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

धर्मात् पुण्यात् कुले सत्कुले जन्म शरीरस्य पटुता देह सौष्ठवम् सौभाग्यं सद्भाग्यं आयुः अवस्था बलं शक्ति भवन्ति । धर्मेण पुण्येन एव निर्मलं विमलं यशः कीर्त्तिः विद्या अर्थः धनम् संपत्तिः ताः भवन्ति । च धर्मः पुण्यं कान्तारात् घोरवनात् च महाभयात् सततं निरन्तरं परित्रायते रक्षाति हि निश्चयेन सम्यग् सुष्ठु प्रकारेण उपासितः सेवितः धर्मः स्वर्गः च अपवर्गश्च द्वौ पदः भवति ।

अर्थ -

धर्म से अच्छे कुल मे जन्म, सुन्दर शरीर भाग्यशाली दीर्घ आयु और बल होता है। धर्म से ही निर्मल यश विद्या धन और संपत्तिया होती हैं। धर्म भयंकर वन मे व महाभय से रक्षा करता है और ठीक तरह से आराधन किया हुआ धर्म देवलोक और मोक्ष को भी देता है।



पत्नी प्रेमवती सुतः सविनयो भ्राता गुणालंकृतः;
स्निग्धो बन्धुजनः सखाऽतिचतुरो नित्यं प्रसन्नः प्रभुः।
निर्लोभोऽनुचरः स्वबन्धुसुमुनिप्रायोपयोग्यं धनं;
पुण्यानामुदयेन संततमिदं कस्यापि संपद्यते ॥ ५ ॥

अन्वय :-

पत्नी प्रेमवती, सुतः सविनयः भ्राता गुणालंकृतः, बन्धुजनः स्निग्धः, सखा अतिचतुरः प्रभुः नित्यं प्रसन्नः, अनुचरे निर्लोभः धनं स्वबन्धु सुमुनि प्रायोपयोग्यं इदं संतत पुण्यानाम् उदयेन कस्य अपि संपद्यते।

संक्षिप्त व्याख्या :-

पत्नी भार्या प्रेमवती प्रेमयुक्ता, सुतः आत्मजः विनयेन सह वर्तमान स विनयो विनयान्वितो भ्रातास हो दरः गुणैः अलंकृतः गुणालंकृतः सद्गुणभूषितः बन्धुजनः बान्धववर्गः स्निग्धः स्नेहशीलः सखा मित्रं अतिचतुरो बहुकुशलः प्रभुः स्वामी नित्यं सदा प्रसन्नः अनुचरः सेवकः निर्लोभः लोभरहितो धनं वित्तं स्वस्य बन्धवः सुमुनयः तेषाम् प्रायोयोग्यं स्वबान्धवं सन् मुनि सेवा-

योग्य इद एतात् सतत निरन्र पुण्यानाम् सुकर्मणाम् उदयेन प्रादुर्भावेन कस्यापि विरलस्यैव जनस्य सपद्यते भवति ।

अथ –

स्त्री प्रेमवाली पुत्र विनययुक्त, भाई गुणो मे विभूपित, वन्धुजन स्नेहशील, मित्र अत्यन्त चतुर, स्वामी नित्य प्रसन्न, सेवक निर्लोभी और धन अपने वान्धव व श्रेष्ठ मुनियो की प्रर्याप्त सेवा के योग्य हो, यह निरन्तर पुण्यो के उदय से किसी के ही होता है ।



रम्यं रूपं करणपटुताऽऽरोग्यमायुर्विशालं
कान्ता रूपा विजितरतयः सूनवो भक्तिमन्तः।
षट्खण्डोर्वीतलपरिवृढत्वं यशः क्षरीशुभ्रं;
सौभाग्य श्रीरिति फलमहो धर्मवृक्षस्य सर्वस् ।६।

अन्वय :-

रम्यं रूपं, करणपटुता, आरोग्यं विशालं आयु विजित-रतयः रूपाकान्ताः भक्तिः मन्तः सूनवः षट्खण्डोर्वीतल परिवृढत्वं क्षीरशुभ्रं यशः सौभाग्यश्रीः अहो इति धर्मवृक्षस्य फलं ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

रम्यं रमणीयं रूपं करणानाम् पटुता करणपटुता इन्द्रियाणाम् भोगक्षमता, आरोग्यं स्वास्थ्यं विशालं, विपुलं आयुः अवस्था विजिता रतिर्याभिः ताः विजितरतयः रतेरप्यधिक सुन्दर्य रूपाः स्वरूपवत्यः कान्ताः पत्न्यः भक्तिमन्तः भक्तियुक्ता सूनवः पुत्राः परिवृढत्वं परिवृढस्य भावः षट्खण्डाचासौउर्वी तस्याः तलं समस्त पृथ्वी मण्ड्ल स्वामित्वं क्षीरवत् शुभ्रम् क्षीरशुभ्रम्

दुग्धधवल यश कीर्ति सौभाग्यस्यश्री सौभाग्यश्रीः सत् भाग्यत्व अहो इत्याश्चर्यम् इति एतत् सर्वं धर्म एव वृक्ष तस्य धर्मवृक्षस्य फल मस्ति ।

अर्थ –

मनोहर रूप, इन्द्रियो की भोग क्षमता, आरोग्य विशाल आयु, रति से भी अधिक सुन्दर रूपवती सुन्दरियाँ, भक्तियुक्त पुत्र छ खण्डवाली पृथ्वी का स्वामित्व दूध के समान शुभ्र यश और सौभाग्य की सपत्ति अहो यह सब धर्म रूपी वृक्ष का फल है ।



३ धर्मप्रभाव

वने रणे शत्रु जलाग्निमध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥१॥

अन्वय :–

पुराकृतानि, पुण्यानि, वने, रणे, शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे वा, पर्वतमस्तके, सुप्तं प्रमत्तं, वा, विषमस्थितं (नरं) रक्षन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

पुराकृतानि पूर्वाचरितानि पुण्यानि सुकृतानि वनेऽरण्ये रणे युद्धे शत्रुश्च जलं च अग्निश्च ते तेषाम् मध्ये शत्रुजलाग्निमध्ये, रिपुनीरानलमध्ये महांश्चासौ अर्णवः महार्णवः तस्मिन् महार्णवे महासमुद्रे वा अथवा पर्वतानां मस्तके पर्वतमस्तके गिरिशिखरे सुप्तं शया-

नम् प्रमत्तमुन्मत्ताम् अथवा विपमे विषमस्थितौ स्थित पतित नर रक्षन्ति गोपयन्ति ।

अर्थ –

पूर्व मे किये हुए पुण्य, वनमे युद्ध मे जल व अग्नि के मध्य मे, महासमुद्र मे अथवा पर्वत के शिखर पर तथा सोये हुए उन्मत्त बने हुए और विषम स्थिति मे पड़े हुए मनुष्य की रक्षा करते है ।



धम्मेण कुलप्पसूई, धम्मेण य दिव्वरूवसंपत्ती ।
धम्मेण धणसमिद्धि, धम्मेण सवित्थरा कित्ती ॥२॥
धर्मेण कुलप्रसूतिः, धर्मेण च दिव्यरूपसंपत्तिः ।
धर्मेण धनसमृद्धिः, धर्मेण विस्तरा कीर्तिः ॥ २ ॥

अन्वय :–

धर्मेण कुलप्रसूतिः, धर्मेण दिव्यरूपसंपत्ति; धर्मेण धनसमृद्धिः च धर्मेण विस्तरा कीर्तिः (भवति)

संक्षिप्त व्याख्या :–

धर्मेण पुण्येन कुले प्रसूतिः कुलप्रसूतिः सत् कुले जन्म, दिव्यं च तत् रूपं दिव्यरूपम् तस्य संपत्तिः दिव्यरूपसंपत्तिः अनुपमरूप प्राप्तिः, धर्मेण धनस्य समृद्धिः धनसमृद्धिः द्रव्यप्रभूतलब्धिः धर्मेण विस्तरा कीर्तिश्च विस्तृता विस्तरा कीर्तिः भवति ।

अर्थ :–

धर्म से उत्तम कुल में जन्म, धर्म से दिव्य रूप की प्राप्ति, धर्म से धन की समृद्धि और धर्म से अत्यन्त विस्तृत कीर्ति होती है ।

तावच्चन्द्रबल ततो ग्रहवल नाराबल भूवल,
तावत्सिद्धयति वाञ्छितार्थमखिल तावज्जन सज्जन.
मुद्रामण्डलतन्त्रमन्त्रमहिमा तावत्कृत पौरुष,
यावत्पुण्यमिद सदा विजयते पुण्यक्षये क्षीयते ।।३।।

पन्वय –

यावत् इदम् पुण्य सदा विजयते तावत् चन्द्रवल तत ग्रहवल तारावल भूवल तावत् अखिल वाञ्छितार्थ सिध्यति तावत् जन सज्जन मुद्रा मण्डल तन्त्र मन्त्र महिमा तावत् पौरुप कृत पुण्यक्षये क्षीयते ।

सक्षिप्त व्याख्या –

यावत् इदम् एतत् पुण्य धर्म सदा सर्वदा विजयते जयति तावत् चन्द्रस्यवल चन्द्रबल शशिबल तत तावत् ग्रहाणाम् सूर्यादिखेचराणाम् वल शक्ति. तावत् ताराणाम् वल शक्ति भुवोवल भूवल पृथ्वीवल तावत् राणाम् नक्षत्रखिल सम्पूर्ण वाछितश्चासौ अर्थ वाछितार्थ तम् अभिप्ट सिध्यति सिद्धम् भवति तावत् जन सज्जन (इति)कथ्यते लोके मुद्रा च मण्डल च तन्त्र च

मन्त्राश्च तेषाम् महिमा भवति तावत् कृतन् पौरुषं पुरुषार्थं सिध्यति पुण्यानाम् क्षये पुण्यक्षये सुकृतनाशे (एतत् सर्वं) क्षीयते नश्यति ।

अर्थ :-

जब तक यह पुण्य सदा विजयशील है, तब तक चन्द्र बल ग्रहबल ताराबल व पृथ्वीबल है तथा तब तक ही सम्पूर्ण अभिष्ट अर्थ सिद्ध होता रहता है तभी तक मनुष्य संसार मे सज्जन कहलाता है, तब तक ही मुद्रा मण्डल तन्त्र और मन्त्र की महिमा है और तब तक ही किया हुआ पुरुषार्थ सफल होता है, किन्तु पुण्य के क्षय हो जाने पर उल्लिखित सभी का क्षय हो जाता है ।

卐

व्यसनशतगताना क्लेशरोगातुराणा
मरणभयहताना दु खशोकार्द्दितानाम् ।
जगति बहुविधाना व्याकुलाना जनाना,
शरणमरणामा नित्यमेको हि धर्म. ॥४॥

अन्वय –

व्यसनशतगताना, क्लेशरोगातुराणा, मरणभयहताना दु खशोकार्द्दितानाम्, जगति व्याकुलाना, बहुविधाना, अशरणाना जनाना हि एक धर्म नित्य शरणम् ।

सक्षिप्त व्याख्या –

व्यसनानाम् शत तत् गतानाम् व्यसनशतगतानाम् आपत्तिशतगतानाम् क्लेशाश्च रोगाश्च क्लेशरोगा तै आतुराणाम् क्लेशव्याधि पीडितानाम् मरणस्य भयेन हतानाम् मृत्युत्रासत्रसिताना दु खै शौकैश्च आर्दितानाम् दु खशोकर्द्दिताना कष्टशोक पीडितानाम् जगति संसारे व्याकुलाना नास्ति शरण येषान्ते तेषाम् अशरणानाम् रक्षकहीनानाम् हि एक धर्म· एकमात्र धर्मः एव नित्य सदा शरण आश्रयदायक रक्षक अस्ति ।

अर्थ –

सैकडो व्यसनो से ग्रसित क्लेशरोग से आतुर मृत्यु भय से भयभीत दु ख और शोक से पीडित व्याकुल, ससार मे अनेक तरह के, शरण हीन मनुष्यो का एक मात्र धर्म ही नित्य रक्षा करने वाला है ।

न देवतीर्थैर्न पराक्रमेण,

न मन्त्र तन्त्रैर्न सुवर्णदानैः ।

न धेनुचिन्तामणि कल्पवृक्षै,

र्विना स्वपुण्यैरिह वाञ्छितार्थाः ॥५॥

अन्वय :-

इह स्वपुण्यैः विना वांछितार्थाः न देवतीर्थैः न पराक्रमेण न मन्त्र तन्त्रैः न सुवंर्णदानै न धेनुचिन्तामणि-कल्पवृक्षैः सिध्यन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

इह अस्मिन् संसारे स्वस्य पुण्यैः निजसुकृतैर्विना वांछिताश्च ये अर्था वाञ्छितार्थाः अभिप्ट कामाः न देवानाम् तीर्थैः देवतीर्थैः अथवा देवाश्च ते तीर्थाश्च देवतीर्थाः तैः देवतीर्थैः न पराक्रमेण न मन्त्राश्च तन्त्राश्च तैः मन्त्र तन्त्रैः न सुवर्णस्य दानैः न धेनुश्च चिन्तामणिश्च कल्पवृक्षश्च ते तै र्धेनुचिन्तामणि कल्पवृक्षैः कामधेनु चिन्तामणिसंतानतरुभिः सिध्यान्ति ।

अर्थ :-

इस संसार में अपने पुण्यों के विना अभिष्ट काम न तो देवों से न तीर्थों से न पराक्रम से न मन्त्र तन्त्रों से न स्वर्ण दान से और न कामधेनु चिन्तामणि कल्पवृक्षों से ही सिद्ध होते हैं ।

पश्चिमाभिमुख याति, त्यक्त्वा विपुलमम्बरम् ।
रवि शूर इति ख्यातो, यशः पुण्यैरवाप्यते ॥ ६ ॥

अन्वय –

रवि विपुलम् अम्बरम् त्यक्त्वा पश्चिमाभिमुखम् याति शूर इति ख्यात. यश पुण्यै. अवाप्यते ।

संक्षिप्त व्याख्या –

रवि सूर्य विपुल विशाल अम्बर आकाश त्यक्त्वा हित्वा पश्चिमाभिमुख अस्ताचल याति गच्छति तथापि शूर इति ख्यात. प्रसिद्धः यश कीर्ति. पुण्यै सुकृतै· प्राप्यते अवाप्यते ।

अर्थ –

सूर्य विशाल आकाश को छोड़कर पश्चिम दिशा की ओर अस्त होने को चला जाता है, फिर भी वह शूर इस नाम से ख्यात है, सच है यश पुण्यों से प्राप्त होता है ।

मासि मासि समाज्योत्स्ना, पक्षयोरुभयोरपि ।
तत्रैकः शुक्लपक्षोऽभूद्यशः पुण्यैरवाप्यते ॥ ७ ॥

अन्वय :–

मासि मासि उभयोः पक्षयोः ज्योत्स्ना समा तत्र एकः शुक्लपक्ष अभूद् यशः पुण्यैः अवाप्यते ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

मासि मासि प्रतिमासम् उभयोः अपि पक्षयोः शुक्ल-पक्ष कृष्णपक्षयोः अपि ज्योत्स्ना चन्द्रिका समा समाना अस्ति तत्र तयोः एकः शुक्लपक्षः अभूद् सत्यं यशः कीर्तिः पुण्यैः दानधर्मादि सत्कर्मभिः अवाप्यते प्राप्यते ।

अर्थ :–

प्रत्येक महिने में दोनों ही पक्षों में चान्दनी समान रहती है फिर भी उन दोनों में से एक ही शुक्ल पक्ष कहलाता है, सच है, यश पुण्य कर्मों से ही प्राप्त हो सकता है ।

४ अनित्यता

सपदो जलतरङ्गविलोला,

यौवन त्रिचतुराणि दिनानि ।

शारदाभ्रमिव चञ्चलमायु,

किं धनैः? कुरुत धर्ममनिन्द्यम् ॥१॥

अन्वय –

सपद जलतरगविलोला यौवन त्रिचतुराणि दिनानि आयु शारदाभ्र इव चञ्चल धनै किम् अनिन्द्यम् धर्म कुरुत ।

सक्षिप्त व्याख्या –

सापद सम्पत्तयः जलस्य तरगा इव विलोला जलतरग-विलोला नीरतरगचचला यून भाव. यौवन युवावस्था त्रिचतुराणि दिनानि अत्यन्त स्वल्पकाल स्थापि आयुर-वस्था शारद इदम् शारद च तत् अभ्रम् शारदा-भ्रम् शरन्मेघ इव चचल अस्थिर अत धनै वित्तै

किम् केवलं धनार्जने एव आयुर्मायापयत इत्यर्थः ननिन्द्यम् अनिन्द्यम् श्लाघ्यं धर्मं सुकृतं कुरुत भो जनाः इति ।

अर्थ :-

संपत्तियां जल की तरंगों के समान चंचल हैं; यौवन तीन चार दिनों का मेहमान है, आयु शरद ऋतु के मेघ के समान चंचल है, इसलिए धन से क्या प्रयोजन, है ? प्रशंसनीय धर्म का अर्जन करो ।



स्वप्ने यथाऽय पुरुष प्रयाति,
ददाति गृह्णाति करोति वक्ति ।
निद्राक्षये तच्च न किञ्चदस्ति,
सर्व तथेद हि विचार्यमाणम् ।।२।।

प्रवय –

यथा अयम् पुरुष. स्वप्ने प्रयाति ददाति गृह्णाति करोति वक्ति च निद्राक्षये तत् किंचित् न अस्ति, तथा विचार्यमाणम् इदम् सर्व न अस्ति ।

पक्षिप्त व्याख्या –

यथा अयम् असौ पुरुप जन स्वप्ने स्वप्नदशायां प्रयाति गन्छति ददाति प्रयच्छति गृह्णाति आदत्ते करोति विदधाति वक्ति वदति च निद्राया क्षये निद्राक्षये निद्राभगे तत् किंचित् किमपि न अस्ति, तथा विचार्यमाणम् विचारे कृते इदम् सर्व ससारस्य ऐश्वर्यादिकम् न अस्ति क्षणभगुरम् इत्यर्थ ।

अथ –

जैसे यह मनुष्य स्वप्न मे जाता है, देता है, ग्रहण करता है, कार्य करता है, बोलता है, और निद्रा भग होने पर कुछ भी नही है । इसी प्रकार विचार करने पर यह ससार का ऐश्वर्य इत्यादि सब कुछ भी नही है, अर्थात् सव कुछ नाशवान् है ।

चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः;
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भ गिरश्च भृत्याः ।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः;
संमीलने नयनयो र्न हि किञ्चिदस्ति ।।३।।

अन्वय :–

चेतोहरा युवतयः अनुकूल स्वजनः सद्बान्धवाः च भृत्याः प्रणयगर्भगिरः दन्तिनिवहा वल्गन्ति तुरंगाः तरलाः नयनयोः संमीलने किंचित् न अस्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

चेतोहरन्तीति चेतोहराः मनोहराः युवतयः तरुण्योऽनुकूलः अनुकूलव्यवहारी स्वजनः आत्मीयजनः संतश्च ते बान्धवा सद्वान्धवाः सज्जनबान्धवः प्रणयगर्भा गीर्येषाम् ते प्रणयगर्भगिरः प्रेमसिक्तवाचः भृत्याः सेवकाः दन्तीनाम् गजानाम् निवहाः यूथाः वल्गन्ति चिंघाड़यन्ति तुरंगा अश्वाः तरलाः चंचलाः किन्तु एतत सर्व नयनयोः नेत्रयोः संमीलने मीलने मनुष्यस्य मृते किंचित् न अस्ति ।

मन को हरने वाली युवतियाँ है, स्वजन अनुकूल हैं, बान्धव सज्जन है और प्रेम मे सनी हुई वाणी बोलने वाले सेवक ह हाथियो के झुण्ड चिंघाड रहे है और चचल घोडे हिनहिना रहे है, किन्तु आँखो के बन्द होने पर अर्थात् मर जाने पर यह सब कुछ भी नही है।



चला विभूतिः क्षणभङ्गि यौवनं,
कृतान्तदन्तान्तरवर्ति जीवितम् ।
तथाप्यवज्ञा परलोकसाधने,
अहो नृणां विस्मयकारि चेष्टितम् ॥४॥

अन्वय :–

विभूतिः चला, यौवनं, क्षणभंगि, कृतान्तदन्तान्तर र्वति जीवितम् तथापि परलोक साधने अवज्ञा अहो नृणाम् चेष्टितम् विस्मयकारि ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

विभूतिः ऐश्वर्यम् चला चंचला यौवनं तारुण्यं क्षणभंगि क्षणभंगुरं जीवितम् जीवनम् कृतान्तस्य यमराजस्य दन्तानाम् दशनानाम् अन्तरवर्ति मध्य स्थितं तथापि परलोकस्य परमार्थस्य साधने अवज्ञा उपेक्षा अहो आश्चर्यम् नृणाम् मनुष्याणाम् चेष्टितम् कार्यम् विस्मयं आश्चर्यम् करोतीति विस्मयकारी ।

अर्थ :–

धन सम्पत्ति चंचल है, युवावस्था क्षणभंगुर है और जीवन यमराज के दांतों के बीच में लगा हुआ है, तो भी परलोक साधन में उपेक्षा है. अहो मनुष्यों की चेष्टा कैसी आश्चर्यजनक है ।

अनित्यनारोग्यमनित्ययौवनं,
विभूतयो जीवितमप्यनित्यम् ।
अनित्यताभि प्रहृतस्यजन्तो,
कथ रति कामगुणेषु जायते ।।५।।

अन्वय –

आरोग्य अनित्य अनित्ययौवन विभूतय जीवितं अपि अनित्य अनित्यताभि· प्रहृतस्य जन्तो कामगुणेषु रतिः कथम् जायते ।

संक्षिप्त व्याख्या –

आरोग्य स्वास्थ्य अनित्य अस्थिर अनित्य च तत् यौवन अनित्ययौवन तारुण्य अपि अनित्या विभूतय सपत्तय अनित्या जीवितम् जीवनम् अपि अनित्यम् अस्थिर एव अनित्यताभि क्षणभगुराभि प्रहृतस्य ग्रसितस्य जन्तोः प्राणिन कामानाम् गुणेषु कामगुणेषु कामभोगेषु रतिः प्रीति कथम् जायते भवति ।

अर्थ –

आरोग्य अनित्य है, यौवन अनित्य है, सपत्तिया अनित्य है जीवन भी अनित्य है इस प्रकार अनित्यताओ से घिरे हुए, प्राणी की काम भोगो मे प्रीति कैसे होती है । यह आश्चर्य है ।

श्रियो विद्युल्लोलाः कतिपयदिनं यौवनमिदं
सुखं दुःखाघ्रातं वपुरनियतं व्याधिविधुरम् ।
दुरापाः सत्पत्न्यो बहुभिरथवा किं ? प्रलपितै-
रसारः संसारस्तदिह निपुणं जागृत जनाः ॥ ६ ॥

अन्वय :–

श्रियः विद्युल्लोलाः इदम् यौवनं कतिपयदिनं सुखं दुःखाघ्रातम् वपुः अनियतम्, व्याधिविधुरं सत्पत्नयः दुरापाः अथवा बहुभिः प्रलपितैः किम् संसारः असारः तत् इह जनाः निपुणं जागृत ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

श्रियः संपदः विद्युत्वत् तडितवत् लोलाः चंचलाः इदम् एतत् यौवनं तारुण्यं कतिपयदिनं नितान्तमस्थिरं सुखं दुःखेन कष्टेन आघ्रातम् युक्तं वपुः शरीरम् अनियतं अस्थिरं पुनश्च व्याधिभिः रोगैः विधुरम् आक्रान्तम् सत्पत्नयः सुशीला भार्याः दुरापाः दुष्प्राप्या अथवा बहुभिः अनेकैः प्रलपितैः कथनैः किं वृथैव संसारः जगत् नास्तिसारं यस्मिन् सः असारः सार-

रहित तत् तस्मात् कारणात् इह अस्मिन् ससारे जना मनुष्या निपुणा सावधानतया जागृत चेतयत ।

अर्थ -

सपत्तिया बिजली के समान चचल है, यह यौवन कुछ दिनो का महमान है, सुख दुख से युक्त है शरीर अनित्य है और इस पर भी रोगो से व्याप्त हे सुशील पत्नियो की प्राप्ति दुर्लभ हे, अथवा अधिक कहने से क्या लाभ ससार असार हे इसलिए है मनुष्यो ? इस ससार मे सावधानी के साथ जागते रहो, अर्थात् चेतो इसमे आसक्त मत होओ ।



आयुर्वारितरङ्गभङ्गुरतरं श्रीस्तूलतुल्यस्थिति
स्तारुण्यं करिकर्णचञ्चलतरं स्वप्नोपमाः संगमाः ।
याच्चान्यद्रमणीमणीप्रभृतिकं वस्त्वस्ति तच्चास्थिरं;
विज्ञायेति विधीयतामयमतो धर्मः सदा शाश्वतः ।७।

अन्वय :-

आयुः वारितरंगभंगुरतरं श्रीः तूलतुल्यास्थितिः तारुण्यं करिकर्ण चंचलतरं संगमाः स्वप्नोपमाः यत् च अन्यत् रमणीमणिप्रभृतिकं वस्तु अस्ति तच्च अस्थिरं अतः इति विज्ञाय सदाऽयम् शाश्वतः धर्मः विधीयताम् ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

आयुः अवस्था वारिणः जलस्य तरंगवत् लहरीवत् भंगुरतरं नश्वरं श्रीः संपत्तिः तूलेन तुल्या समा स्थितिः अस्याः सा तूलतुल्यस्थितिः तारुण्यं यौवनं करिणः गजस्य कर्णवत् चंचलतरं अतिलोलम् संगमाः प्रियजनानाम् संयोगाः स्वप्नोपमाः स्वप्नतुल्याः यच्च अन्यत् रमणी मणिप्रभृतिकं स्त्रीरत्नादिकं वस्तु अस्ति तच्च अस्थिरं

ग्रस्थायि ग्रत इति विज्ञाय ज्ञात्वा सदा सर्वदा ग्रयम् शाश्वत स्थिर धर्म सुकृत विधीयताम् क्रियताम् ।

अर्थ -

ग्रायु जल की तरग के समान नश्वर है सपत्ति रुई के समान स्थिति वाली है, यौवन हाथी के कानके समान ग्रत्य त चचल है, प्रियजनो का सयोग स्वप्न तुल्य है, तथा ग्रौर भी स्त्री रत्न ग्रादि वस्तु है, वह ग्रस्थिर है ग्रत ऐसा जानकर सदा इस शाश्वत धर्म का ही पालन करना चाहिये ।



५ विधि

येनोदितेन कमलानि विकासितानि;
तेजांसि येन निखिलानि निराकृतानि ।
येनान्धकारनिकरप्रसरो निरुद्धः;
सोऽप्यस्तमाप हतदैववशाद्दिनेशः ॥१॥

अन्वय :-

उदितेन येन कमलानि विकासितानि येन निखिलानि तेजांसि निराकृतानि येन अन्धकारनिकरप्रसर. निरुद्धः स अपि दिनेशः हतदैववशात् अस्तं आप ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

उदितेन आविर्भूतेन येन सूर्येण कमलानि पद्मानि विकासितानि उद्भासितानि येन सूर्यो निखिलानि अखिलानि तेजांसि दीप्तीनि निराकृतानि तिरस्कृतानि येन रविणा अंधकारनिकरप्रसरः अंधकारस्य तमसः निकरस्य समूहस्य प्रसरः वृद्धिः निरूद्धोऽवरूद्धः सोऽपि दिनेशः सूर्यः हतश्चासौदैव हतदैवः तस्य वशात् कारणात् अस्तं आप अस्तं गतः ।

अर्थ :-

उदय होते हुए जिसने कमलों को खिला दिये । जिसने सम्पूर्ण तेजों को निराकरण कर दिया, जिसने अंधकार के समूह के प्रसार को रोक दिया, वह सूर्य भी भाग्य हीनता के कारण अस्त हो गया ।

यन्मनोरथशतैरगोचर,

यत्स्पृशन्ति न गिर कवेरपि ।

स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा,

लीलयैव विदधाति तद्विधि ॥२॥

अन्वय –

यत् मनोरथशतै अगोचर यत कवे अपि न स्पृशान्ति यत्र स्वप्नवृत्ति अपि दुर्लभा विधि तत् लीलया एव विदधाति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

यत् मनोरथानाम् शते मनोरथशतै न गोचर अगोचरं यत् कवे गिर वाच अपि न स्पृशन्ति यत्र यस्मिन् विपये स्वप्नस्य वृत्ति स्वप्नवृत्ति अपि दुर्लभा विधि विधाना तत् लीलया अनायमेन एव विदधाति करोति ।

अर्थ –

जो सैकटो मनोरथो के द्वारा अगोचर है, व जिसको कवि की वाणिया भी स्पर्श नही कर कसती हैं और जिम विपय मे स्वप्न की वृत्ति भी दुर्लभ है, विधाता उसे अनायास ही बना देता है ।

अघटितघटितानि घटयति,
सुघटितघटितानि जर्जरीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति,
यानि पुमान्नैव चिन्तयति ।।३।।

अन्वय :-

विधिः अघटित घटितानि घटयति, सुघटितघटितानि जर्जरी कुरुते, तानि घटयति यानि पुमान् नैव चिन्तयति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

विधिर्विधाता न घटितानि अघटितानि अघटितानि च तानि घटितानि अघटितघटितानि असम्भव सम्भवानि घटयति करोति सुष्ठु घटितानि सुघटितानि सुघटितानि च तानि घटितानि सुघटित घटितानि सम्यग् निर्मितानि न जर्जरोऽजर्जरः तम् जर्जरं करोतीति जर्जरी कुरुते विघटयति यानि पुमान् पुरुषः नैव चिन्तयति विचारयति ।

अर्थ :-

विधाता ही अघटित को घटित कर देता है, सूदृढ़ बने हुए को जर्जर कर देता है, और उनको घड़ देता है जिनको कि मनुष्य कल्पना भी नही करता है ।

छित्वा पाशमपास्य कूटरचना भक्त्वा बलाद्वागुरा,
पर्यन्ताग्निशिखाकलापजटिलान्निर्गत्यदूरं वनात् ।
व्याधाना शरगोचराण्यतिजवेनोत्लघ्य धावन् मृगः,
कूपान्त पतित करोतु विधुरे किं वा विधौ पौरुषम् ।४।

अन्वय –

पाशम् छित्वा कूटरचना अपास्य बलात् वागुरा भक्त्वा-पर्यान्ताग्निशिखाकलाप जटिलान् वनात् दूर निर्गत्य अति जवेन व्याधानाम् शरगोचराणि उल्लघ्य धावन् मृग कूपान्त पतित वा विधौ विधुरे पौरुषम् कि करोतु ।

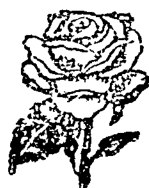
सक्षिप्त व्याख्या –

पाशम् बन्धनम् छित्वा छेदयित्वा कूटरचना कपटजाल अपास्य हित्वा बलात् बलपूर्वकम् वागुरा भक्त्वा छिन्न भिन्न कृत्वा पर्यन्ताग्ने. ज्वलित वह्ने शिखानाम् ज्वालानाम् कलापे न समूहेन जटिलात् व्यापृतात् वनात् अरण्यात् दूर निर्गत्य नि सृत्य अपि जवेन अतिवेगेन व्याधानाम् मृगयापराणाम् शरणाम् गोच-

राणि शरगोचराणि वाणलक्ष्य विषयाणि उत्लंघ्य अतिक्रम्य धावन् पलायन् मृगः हरिणः कूपान्तः कूपे पतितः अपतत् वा अथवा विधौ दैवे विधुरे विपरीते पौरुषम् पुरुषस्य भावः पौरुषम् पौरुषार्थम् किन्करोतु न किमपी त्यर्थः ।

अर्थ :–

जाल को तोड़ कर, कूट बन्धन को दूर फेंककर वल पूर्वक वागड को तोड़कर प्रज्ज्वलित अग्नि की ज्वालाओं से जटिल वन से निकल कर के हरिण कूए में गिर पड़ा अथवा दैव के प्रतिकूल हो जाने पर पुरुषार्थ क्या कर सकता है । कुछ भी नही कर सकता है ।



यभद्गन धनुरीश्वरस्य शिशुना यज्जामदग्न्यो जित्
स्त्यक्ता येन गुरोर्गिरा वसुमती वद्धो यदम्भोनिधि ।
एकैक दशकन्धरस्य क्षय कृद्रामस्य कि वर्ण्यत्,
दैव वर्णय येन सोऽपि सहसा नीत कथाशेषताम् ॥५॥

अन्वय –

यत् शिशुना ईश्वरस्य धनु भग्न यत् जामदग्न्य जित
येन गुरो गिरा वसुमतित्यक्त्यद् अम्भोनिधि बद्ध
दशकन्धरस्य एकैकम् क्षयकृत् रामस्य किम् वर्णयते
दैवम् वर्णय येन स अपि सहसा कथाशेपताम् नीत ।

सक्षिप्त व्याख्या –

यत् शिशुना वालेन रामेण ईश्वरस्य शकरस्य धनु.
धनुप भग्न त्रोटितम् यत् जमदग्नेरपत्यम् पुमान् जाम-
दग्न्य परशुराम जित पराजयम् नीत येन रामेण
गुरो पितु दशरथस्य गिरा वचसा वसुमती पृथ्वी
त्यक्ता परित्यक्ता यत् अम्भसाम् निधि अम्बोनिधि
समुद्र बद्ध सेतुना इत्यर्थ दशकन्धरा यस्य स
तस्य दशकन्धरस्य रावणस्य एक एक इति एकैक

प्रत्येकं क्षयं करोतीति क्षयकृद् क्षयकृद् चासौ रामः तस्य क्षयकृद् रामस्य नाशकर्तू रामस्य किम् वर्ण्यते वर्णनम् क्रियते दैवम् विधिम् वर्णय येन विधिना स रामोऽपि कथाशेषः तस्य भावः ताम् कथाशेषताम् कथामात्रैव शेषताम् नीतः प्रापितः ।

अर्थ :–

जो कि बालक रामने भगवान् शंकर के धनुष को तोड़ दिया और परशुराम को जीत लिया और जिसने पिता दशरथ के वचन से पृथ्वी को त्याग कर दिया और समुद्र को बान्ध दिया, रावण के एक एक योद्धा का नाश करने वाले उस राम का क्या वर्णन करते हो, विधाता का वर्णन करो जिसने कि उस राम को भी मात्र कथा रूप में ही शेष कर दिया, अर्थात् समाप्त कर दिया ।



नेता यस्स वृहस्पति प्रहरण वज्र सुरा· किङ्करा,
स्वर्गो दुर्गमनुग्रह खलु हरेरैरावणो वाहनम् ।
इत्याश्चर्यवलान्वितोऽपि वलभिद्भग्न परै सगरे,
तद्युक्त ननु दैवमेव शरण धिग् धिग् वृथा पौरुषम् ।।६।।

अ वय –

यस्य वृहस्पति नेता प्रहरण वज्र सुरा किंकरा स्वर्ग·
दुर्ग खलु हरे· अनुग्रह ऐरावण वाहनम् इति आश्चर्य
वलान्वित. अपि वलभिद् परै सगरे भग्न ननु तत् युक्त
दैव एव शरणम् वृथा पौरुषम् धिक् धिक् ।

सक्षिप्त व्याख्या –

यस्य इन्द्रस्य वृहस्पति सुराचार्य नेता नायक प्रहरणम्
आयुधम् वज्रम् पवि सुरा देवा किंकरा सेवका·
स्वर्ग. नाक दुर्गम् खलु हरे विष्णो अनुग्रह. कृपा
ऐरावण एरावतगजो वाहनम् वाहयतीति वाहनम् इति
एव आश्चर्य वलेन आश्चर्यकारी शक्तया अन्वित·
युक्त अपि वलभिद् सुरेन्द्र सगरे युद्धे परै. शत्रुभि
भग्न. पराजित तत् तस्मात् कारणात् ननु निश्चयेन

युक्तं समुचितं यद् दैवं विधिः एव शरणं रक्षकं वृथा पौरुषम् धिक् धिक् ।

अर्थ :-

जिसके वृहस्पति नेता, शस्त्र वज्र, सेवता सेवक, स्वर्ग किला व भगवान् विष्णु की कृपा और ऐरावत हाथी वाहन है इस प्रकार आश्चर्यकारी शक्ति से युक्त होता हुआ भी देवराज इन्द्र युद्ध में शत्रुओं से हार गया तो निश्चय यही ठीक है कि एक मात्र विधि ही शरण है, और वृथा पुरुषार्थ को धिक्कार है ! धिक्कार है !!



स्थान त्रिकूट परिखा समुद्रो,

रक्षांसि योद्धा धनदाच्च वित्तम् ।

सजीवनी यस्य मुखे च विद्या,

स रावण कालवशाद्विपन्न· ॥७॥

अन्वय –

यस्स त्रिकूट स्थानम् समुद्र परिखा रक्षासि योद्धाः च धनदात् वित्तम् मुखे सजीवनी विद्या च स. रावणः कालवशात् विपन्न. ।

सक्षिप्त व्याख्या –

यस्स रावणस्य त्रिकूट त्रिकूटपर्वत स्थान वासस्थानम् समुद्र सागर परिखा रक्षासि राक्षस योद्धा च धनदात् कुबेरात् वित्तम् धनम् च मुखे आनने सजीवनी विद्या स रावण कालवसात् कालस्य वशात् विपन्नः मृत. ।

अर्थ –

जिस रावण के त्रिकूट पर्वत निवास स्थान, समुद्र खाई, राक्षस योद्धा व कुबेर से धन प्राप्त होता था और जिसके मुख मे सजीवनी विद्या थी वह रावण काल के वश से मर गया ।

६ कर्म

यदुपात्तमन्यजन्मनि शुभ–मशुभं वा स्वकर्मपरिणत्या।
तच्छक्यमन्यथा नैव कर्त्तुं देवासुरैरपि हि ॥ १ ॥

अन्वय :–

अन्यजन्मनि शुभं वा अशुभं यत् उपात्तम् तत् स्वकर्म परिणत्या अन्यथा कर्त्तुम् देवासुरैः अपि न एव शक्यम्।

संक्षिप्त व्याख्या :–

अनुस्यमिन् जन्मनि अन्यजन्मनि पूर्वभवे शुभम् सुकृतम् वा अशुभम् दुष्कृतम् यत् उपात्तम् अर्जितम् तत् स्वस्य आत्मनः कर्मणः कार्यस्य परिणत्या परिपाकेन अन्यथा कर्त्तुम् परिवर्तयितुम् देवाश्च असुराश्च देवासुराः तैः देवदैत्यैः अपि कर्त्तुम् विधातुम् नैव न एव शक्यम्।

अर्थ :–

मनुष्य ने पूर्व जन्म में शुभ या अशुभ जो भी कर्म अर्जित किया है, उसे अपने कर्म का परिपाक होने पर बदलने के लिए देवता अथवा असुर कोई भी समर्थ नहीं है अर्थात् इनके द्वारा भी नहीं बदला जासकता है।

प्रचलति यदि मेरु शीतता याति वह्नि,
उदयति यदि भानु पश्चिमाया दिशायाम् ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलाया,
तदपि न चलतीय भाविनी कर्मरेखा ।।२।।

अन्वय –

यदि मेरु प्रचलति वह्नि शीतता याति यदि भानु पश्चिमाया दिशायाम् उदयति यदि पद्म पर्वताग्रे शिलायाम् विकसति तदापि भाविनी इयम् कर्म रेखा न चलति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

यदि मेरु मेरुपर्वत. प्रचलति चलति यदि वह्निरग्नि. शीततास्म् शीतलताम् याति गच्छति यदि भानु सूर्य. पश्चिमायाम् दिशायाम् प्रतीच्याम् दिशि उदयति उदयो भवति यदि पद्मम कमलम् पर्वतानामग्रे पर्वताग्रे गिरि शिखरे शिलायाम प्रस्तरे विकसति प्रस्फुटति तदपि भाविनी भविष्यन्तीयम् कर्मण रेखा कर्मरेखा भाग्यरेखा न चलति परिवर्तयति ।

अर्थ :-

यदि मेरु पर्वत चलने लग जाय, यदि अग्नि शीतल हो जाय, यदि सूर्य पश्चिम दिशा में उदय होने लग जाय, और यदि कमल पर्वत के शिखर पर शिलाखण्ड पर खिलने लग जाय तो भी होने वाली यह कर्म रेखा विचलित नहीं होती है, अर्थात् बदलती नहीं है।



नैवाकृति फलति नैव कुलं न शील;
विद्यापि नैव न च जन्मकृतापि सेवा।
कर्माणि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथेह वृक्षा ॥३॥

अन्वय –

न आकृति फलति नैव कुलं न शील विद्या अपि नैव न च जन्मकृता सेवा अपि फलति इह पुरुषस्य पूर्वतपसा सचितानि कर्माणि फलन्ति यथा काले वृक्षा फलन्ति।

संक्षिप्त व्याख्या –

आकृति पुरुषस्य आकार नैव कुल अन्वय न शीलम् सच्चारित्रम् विद्या अपि न एव नैव च जन्मकृता जन्मपर्यन्त विहिता सेवा अपि फलति इह ससारे पुरुषस्य पूर्वतपसा पूर्वकृत तपस्यया सचितानि अर्जितानि कर्माणि सुकृतानि दुष्कृतानि वा काले फलन्ति फल ददति यथा वृक्षा द्रुमा काले समये फलन्ति फल ददन्ति।

अर्थ –

न तो आकृति न कुल न शील न विद्या ही और न जन्म भर की हुई सेवा ही फलती है, इस ससार में मनुष्य के पूर्व जन्म की तपस्या से सचित किये हुए कर्म समय पर फलते है, जैसे कि वृक्ष समय पर फल देते है।

उइअसि सहस्सकरे, सलोयणो पिच्छइ सयललोओ।
जं न उलूओ पिच्छइ, सहस्सकिरणस्स को दोसो ॥४॥
उदिते सहस्त्रकरे, सलोचनः पश्यति सकललोकः।
यत् न उलूकः पश्यति सहस्त्रकिरणस्य को दोष ॥४॥

अन्वय :–

सहस्त्रकरे उदिते सलोचनः सकललोकः पश्यति यत् उलूकः न पश्यति तत् सहस्त्रकिरणस्य कः दोषः।

संक्षिप्त व्याख्या :–

सहस्त्राणि कराः यस्स सः तस्मिन् सहस्त्रकरे सूर्ये उदिते उदितं गते लोचनैः सह वर्तमानः सलोचनः सुनयनः सकलश्चासौ लोकः सकललोकः सम्पूर्णसंसारः पश्यति अवलोकयति तत् परम् उलूकः घूर्घरः न पश्यति विलोकयति तत् सहस्त्रकिरणस्य भानोः कः दोषः न कोपीत्यर्थः।

अर्थ :–

सूर्य के उदय होने पर नेत्रों वाला सम्पूर्ण संसार देखने लगता है, किन्तु उल्लू नहीं देखता है तो सूर्य का इसमें क्या दोष है, अर्थात् कुछ भी दोष नही।

यद्वज्रमयदेहास्ते, शलाकापुरुषा अपि ।
न मुच्यन्ते विना भोग, स्वनिकाचितकर्मणः ॥५॥

अन्वय –

यत् वज्रमय देहा ते, शलाकापुरुषा अपि भोगम् विना स्वनिकाचित कर्मण. न मुच्यन्ते ।

सक्षिप्त व्याख्या –

यत् वज्रमय देह एषान्ते प्रसिद्धा वज्रमयदेह अति सुदृढशरीरा. ते शलाकापुरुषा असाधारण महापुरुषा अपि भोगम् स्वस्य निकाचितम् कर्म तस्मात् स्वनिकाचित कर्मण निजकृतातिकठोरकर्मण न मुच्यन्ते मुक्ता भवन्ति ।

अर्थ –

जो कि वज्र के समान सुदृढ शरीर वाले वे प्रसिद्ध शलाकापुरुष भी भोग के बिना अपने द्वारा किये हुए कठोर कर्म से नही छूटते हैं ।

सुखस्य दुःखस्य न कोपिदाता,
परोददातीति कुबुद्धिरेषा ।

पुराकृतं कर्म तदेव भुज्यते,
शरीर हेतोस्त्वरया त्वया कृतम् ॥६॥

अन्वय :-

सुखस्य दुःखस्य दाता कोऽपि न परः ददाति इति एषा कुबुद्धिः त्वया शरीरहेतोः यत् पुराकृतम् एव कर्म भुज्यते ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

सुखस्य आनन्दस्य दुःखस्य कष्टस्य दाता दायकः कोऽपि न परः अन्यो वा शत्रुः ददाति यच्छति इति एषा इयम् कुत्सिता बुद्धिः कुबुद्धिः दुर्मतिः त्वया भवता शरीरस्य देहस्य हेतोः कारणात् त्वरया शीघ्रतया यत् कर्म कार्यम् कृतम् विहितम् पुराकृतम् पूर्वकृतं तत् एव कर्म कार्यम् भुज्यते प्राप्यते ।

अर्थ :-

सुख और दुःख का देने वाला कोई भी नहीं है, दूसरा अथवा शत्रु देता है, यह कुबुद्धि है । तूने शरीर के कारण से जो काम जल्दी से किया था पहले का किया वहि कर्म अब भोगा जा रहा है ।

वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद् विकार,
नैमित्तिका ग्रहकृत प्रवदन्ति दोषम् ।
भूतोपसर्गमथ मन्त्रविदो वदन्ति,
कर्मैव शुद्धमतयो यतयो गृणन्ति ।। ७ ।।

अन्वय –

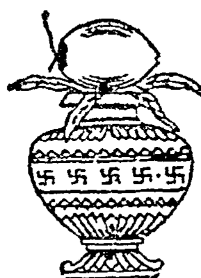
वैद्या कफपित्तमरुद्विकारम् वदन्दि, नैमित्तिका ग्रहकृतम् दोपम् प्रवदन्ति, अथ मन्त्रविद भूतोपसर्गम् वदन्ति, शुद्धमतय यतय कर्म एव गृणन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

वैद्या चिकित्सका कफश्च पित्त च मरुच्च कफपित्तमरुत तेपाम् विकार कपपित्तमरुद्विकार वदन्दि कथयन्ति, नैमित्तिका ज्योतिपशास्त्रविद ग्रहै॰ शन्यादि ग्रहै कृतम् विहितम् दोपम् प्रवदन्ति जल्पन्ति अथ तथा मन्त्रान् विदन्ति ते मन्त्रविद मन्त्रज्ञा भूतानाम् प्रेतानाम् उपसर्गम् दोपम् वदन्ति ब्रुवते शुद्धामतिर्येपान्ते शुद्धमतय॰ निर्मलबुद्धय यतय सन्यासिनः कर्म एव गृणन्ति स्वीकुर्वन्ति ।

अर्थ :-

वैद्य कफपित्त और वायु का विकार कहते है, ज्योतिषी ग्रहों के द्वारा किया हुआ दोष बताते हैं, मन्त्रविद् झाड़ा झपटा करने वाले मन्त्रज्ञ भूत प्रेतों का दोष बताते है, तथा शुद्ध बुद्धि वाले साधु मुनिराज कर्म को ही स्वीकार करते हैं।



७ भाग्य

दवेन प्रभुणा स्वय जगति, यद् यस्य प्रमाणीकृत,
तत्तस्योपनयेन्मनागपि सदा नैवाश्रय' कारणम् ।
सर्वाशापरिपूरके जलधरे वर्षत्यपि प्रत्यह,
सूक्ष्मा एव पतन्ति चातकमुखे द्वित्रा पयोबिन्दव ॥१॥

अन्वय –

प्रभुणा दवेन स्वय जगति यस्य प्रमाणीकृतम् तत् तस्य उपनयेत् आश्रय मनागपि सदा कारणम् न सर्वाशा-परिपूरके जलधरे प्रत्यह वर्षति अपि सूक्ष्मा द्वित्राः पयोबिन्दव चातकमुखे पतन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

यत् प्रभुणा ऋषभदेवेन स्वय दवेनवनाग्नितायस्य भाग्यस्य प्रमाणीकृतम् न प्रमाणम् अप्रमाणम् अप्रमा-णम् प्रमाणम् कृतम् इति प्रमाणीकृतम् तत् तस्य उपनयेत् सदा तस्य आश्रय मनाक् स्वल्पम् अपि कारणम् न सर्वा चासौ आशा सर्वाशा तस्या परि-

पूरकः तस्मिन् सर्वाशापरिपूर के सर्वाशापूर्ण करे जलम् धरतीति जलधरः तस्मिन् जलधरे मेघे प्रत्यहम् प्रति-दिनं वर्षति अपि सूक्ष्मा एव द्वित्राद्वेतिस्रो वा पय विन्दवः जलविन्दवः चातकस्य मुखे चातकमुखे पतन्ति निपतन्ति ।

अर्थ :-

प्रभु ऋषभदेव ने वनाग्नि के द्वारा स्वयं जगत में जिस भाग्य का प्रमाणीकरण कर दिया थोड़ा सा भी आश्रय कारण नहीं है, देखो ! सभी आशा को परि-पूर्ण करने वाले मेघ के सदा बरसते रहने पर भी सूक्ष्म दो-तीन जल की बूँदें चातक के मुख में गिरती है ।



यद्धात्रा निजभालपट्टलिखित स्तोक महद्वाधन,
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरा मेरौ च नातोऽधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणा वृत्ति वृथा मा कृथा,
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्य जलम् ।२।

अन्वय –

धात्रा यत् स्तोक वा महत् धन निजभालपट्टलिखित मरुस्थले अपि नितरा प्राप्नोति अत अधिक मेरौ अपि न प्राप्नोति तत् धीर भव वित्तवत्सु वृथा कृपणा वृत्ति मा कृथा पश्य घट कूपे पयोनिधौ तुल्य जलम् गृह्णाति ।

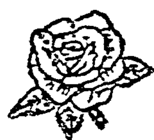
सक्षिप्त व्याख्या –

धात्रा विधात्रा यत् स्तोकमल्पम् वा महद् विपुलम् धनम् द्रव्यम् निजस्य भालपट्टे लिखित निजभालपट्ट-लिखित स्वभाग्ये लिखित तत् धन नितराम् मनुष्य मरुस्थले धनरहितदेशे अपि प्राप्नोति लभते च अतोऽधिकम् ततोऽधिकम् मेरौ मेरुपर्वत अपि न प्राप्नोति तत् तस्मात् कारणात् धीरो भव धैर्य धारणम् कुरु वित्तम,

अस्ति एषाम् ते तेषु वित्तवत्सु धनिकेषु वृथा निरर्थ-
कम् कृपणाम् वृत्तिम् दीनाम् वृत्तिं मा कृथाः मा
कुरु पश्य अवलोकय घटः घटपात्रं कूपे पयोनिधौ समु-
द्रेऽपि तल्यम् समम् जलम् नीरम् गृह्णाति आदत्ते ।

अर्थ :-

विधाता ने जो थोड़ा अथवा अधिक धन अपने भाग्य में लिख दिया है, उसे मनुष्य एकान्त मरुस्थल में भी प्राप्त कर सकता है, और अधिक मेरु पर्वत पर भी नहीं प्राप्त कर सकता है, इसलिए तू धीर बन और व्यर्थ ही धनवानों के सामने दीनता मतकर। देख घड़ा कूए और समुद्र में भी समान ही जल ग्रहण करता है।



औषधं मन्त्रवाद च, नक्षत्र गृहदेवता ।
भाग्यकाले प्रसीदन्ति, अभाग्ये यान्ति विक्रियाम् ॥३॥

अन्वय –

औषधम् मन्त्रवादम् नक्षत्रम् च गृहदेवता भाग्यकाले प्रसीदन्ति अभाग्ये विक्रियाम् यान्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

औषधम् औषधि· मन्त्रवादम् मन्त्रा नक्षत्रम् ग्रहा च गृहस्य देवता गृहदेवता भाग्यस्य काले भाग्यकाले सद्-भाग्ये प्रसीदन्ति प्रीणयन्ति अभाग्ये दुर्भाग्ये विक्रियाम् यान्ति विकारम् गच्छन्ति प्रतिकूला भवन्ति व्यर्था भवति इत्यर्थं ।

अर्थ –

औषधि मन्त्र ग्रह और गृह के देवता सब भाग्योदय के समय में प्रसन्न हो जाते हैं दुर्भाग्य के काल में सभी प्रतिकूल हो जाते है ।

पौष्पाः पञ्च शरा. सरासनमपि ज्याशून्यमक्ष्णोर्लता;
जेतव्यं च जगत्त्रयं प्रतिदिनं जेताऽप्यनङ्गः किल ।
ईदृक्षेऽपि वशीकृतं त्रिभुवनं जानेऽस्मि तत्कारणम्;
तेजो यस्स विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ।४।

अन्वय :-

पौष्पाः पंच शरः सरासनम् अपि ज्याशून्यम् अक्ष्योः लताः प्रतिदिनम् जगत्याम् जेतव्यम् जेता अपि अनंगः किल ईदृक्षे अपि त्रिभुवनम् वशीकृतम् अस्मि तत् कारणम् जाने यस्य तेजो विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

पौष्पाः पुष्पाणाम् कुसुमानाम् इमे पौष्पाः पंच शराः बाणाः सराणाम् आसनम् सरासन धनुषोऽपि ज्यया मौर्व्या शून्यः अक्ष्णोः लता नेत्रकपक्षः प्रतिदिनं प्रत्यहम् जगतां त्रयं जगत्त्रयं भुवनत्रयं जेतव्यं जयकरणं जेता विजेता अनंगः शरीर रहितः कामः किल ईदृक्षेऽपि त्रिभुनं त्रिलोकं वशीकृतं स्वायत्तीकृतं अस्मि

ग्रहम् तत् कारण तस्य कारण तन् निदान जाने जानामि यस्य तेज ओजो विराजते शोभते स वलवान् शक्तिशाली स्थूलेपु स्थूलविपयेपु क प्रत्यया विश्वास• न कोऽपीत्यर्थ ।

अर्थ -

पुष्प के पाच वाण, धनुप भी डोरी से शून्य नेत्र कटाक्ष और इनसे प्रतिदिन तीनो जगत् को जीतना तथा जीतने वाला भी शरीर से रहित (कामदेव) ऐसा होने पर भी तीनो भुवन को जीत लिया । मैं उसका कारण जानता हूँ, कि जिसमे तेज शोभा देता है, वही वलवान् है, स्थूल साधनो पर क्या विश्वास अर्थात् कोई विश्वास नही ।



सेवितोऽपि चिरं स्वामी, विना पुण्यं न तुष्यति ।
भानोराजन्मभक्तोऽपि, पश्य निश्चरणोऽरुणः ।। ५ ।।

अन्वय :–

चिरम् सेवित स्वामी अपि पुण्यम् विना न तुष्यति पश्य भानोः आजन्मभक्तः अपि अरुणः निश्चरणः ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

चिरम् चिरकालम् सेवितः आराधितः अपि स्वामी प्रभुः पुण्यम् सुकृतम् विना न तुष्यति संतुष्यति भानोः सूर्यस्य जन्मनः आ इति आजन्म भक्तः सेवकोऽपि अरुणः अनूरुः निश्चरणः नि र्न स्तः चरणौ यस्य सः निश्चरणः चरण–रहितः ।

अर्थ :–

चिरकाल तक सेवा किया हुआ भी स्वामी पुण्य के बिना संतुष्ट नहीं होता है, देखो ! सूर्य का आजन्म भक्त अरुण भी चरणो से रहित है ।

दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तम' किं दीपमात्र तम,
वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरय किं वज्रमात्रा नगा ?
हस्ती स्थूलतनु स चाङ्कुशवश किं हस्तीमात्रोऽङ्कुशः,
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु क प्रत्यय ॥६॥

अन्वय –

दीपे प्रज्वलिते तम प्रणश्यति किम् तमः दीपमात्र' वज्रेणाभिहत गिरय' पतन्ति किं नगा. वज्रमात्रा हस्तीस्थूल तनु स च अकुशवश कि अकुश हस्ती मात्र तेज यस्य विराजते म बलवान् स्थूलेषु क प्रत्यय।

संक्षिप्त व्याख्या –

दीपे प्रज्वलिते प्रकाशिते तम अन्धकार प्रणश्यति नश्यति किम् तम ध्वान्त दीपमात्र न इत्यर्थ वज्रेण पविना अभिहता प्रताडिता' गिरय पर्वता पतन्ति निपतन्ति किम् नगाः भूधरा वज्रमात्रा न इत्यथ हस्ती गज' स्थून तनु यस्य सं स्थूलतनु स्थूलशरीर स च अकुशस्य वश अकुशवश अकुशाधीन किम्

अंकुशः हस्तीमात्रः हस्तीपरमितः यस्य तेज विराजते यस्मिन् ओजः अस्ति सः वलावान् शक्तिमान् स्थूलेषु पुष्टशरीरादिपु कः प्रत्ययः व कोऽपि विश्वासः ।

अर्थ :-

दीप के प्रज्ज्वलित होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है, किन्तु क्या अन्धकार दीपक जितना ही छोटा होता है, अर्थात् नहीं । वज्र से प्रताड़ित होने पर पर्वत टूट जाते है, किन्तु क्या पर्वत वज्र जितने ही होते है, अर्थात् नही । हाथी मोटे शरीर वाला होता है, लेकिन अंकुश के वश हो जाता है, किन्तु क्या अंकुश हाथी इतना होता है, अर्थात् नहीं । जिसमें तेज है, वही बलवान् है स्थूल वस्तुओं पर क्या विश्वास अर्थात् कोई विश्वास नहीं ।



उद्यमं कुर्वता पुंसा, भाग्यं सर्वत्र कारणम् ।
समुद्रमथानाल्लेभे, हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥६॥

अन्वय –

उद्यमम् कुर्वताम् पुंसाम् भाग्यम् सर्वत्र कारणम् समुद्रमथनात् हरि लक्ष्मीम् हर विषम् लेभे ।

संक्षिप्त व्याख्या –

उद्यमम् प्रयत्नम् कुर्वताम् विदधाताम् पुंसाम् मनुष्याणाम् भाग्यम् दैवम् सर्वत्र सर्वस्मिन् स्थाने कारणम् निदानम् समुद्रस्य मथनात् सागरमथनात् हरि विष्णु लक्ष्मीम् इन्दिराम् हर शिव विषम् गरलम्, लेभे लब्धवान् ।

अर्थ –

पुरुषार्थ करने वाले मनुष्यों का भाग्य सभी जगह कारण होता है, समुद्र मथने से विष्णु को लक्ष्मी और शिव को विष प्राप्त हुआ ।

८ सत्त्व

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमंति मध्याः ।
विघ्नैः सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ॥१॥

अन्वय :-

नीचैः विघ्नभयेन न खलु प्रारभ्यते मध्यमाः प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति उत्तमगुणाः सहस्रगुणैः विघ्नैः हन्यमनाः अपि प्रारब्धम् न परित्यजन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

नीचैः नीचप्रकृतिकैः पुरुषैः विघ्नस्य प्रत्यूहस्य भयेन त्रासेन खलु निश्चयेन (कार्यम्) न प्रारभ्यते आरभ्यते मध्याः मध्यप्रकृतिकाः प्रारभ्य कार्यमारभ्य विघ्नैः उपद्रवैः विहिताः प्रताड़िता विरमन्ति कार्यम् परित्यजयन्ति उत्तमाः श्रेष्ठाः गुणाः येषान्तेगुणाः उत्तमगुणाः

उच्चप्रकृतिका पुरुषा सहस्त्रगुणितै सहस्त्रगुणै विघ्नै हन्यमाना बाधिता अपि प्रारब्धं कार्यं न परित्यजन्ति त्यजन्ति।

अर्थ –

नीच प्रकृति वाले पुरुष विघ्नो के भय से कार्य का प्रारम्भ नही करते है। तथा मध्यम प्रकृति वाले पुरुष कार्य का प्रारम्भ करके विघ्नो से बधित होते हुए उसको छोड देते है। और उत्तमगुण वाले पुरुष हजार गुणे विघ्नो से बाधित होते हुए भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को अधूरा नही छोडते हैं।



अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं,
कूर्मो बिभर्ति धरणिं किल चात्मपृष्ठे ।
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥२॥

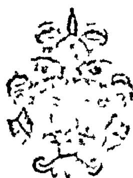
अन्वय :–

हरः अद्यअपि कालकूटं न उज्झति किल कूर्मः आत्म-पृष्ठे धरणिम् बिभर्ति किल च अम्भोनिधिः दुःसहवाडवाग्निम् वहति सुकृतिनः अंगीकृतम् परिपालयन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

अद्यापि अधुनापि हरः शिवः कालकूटम् तन्नामकम् विषम् न उज्झति त्यजति कूर्मः कमठः आत्मनः पृष्ठे आत्मपृष्ठे स्वपीठोपरि धरणिम् पृथ्वीम् बिभर्ति धारयति किल च अम्भसाम् निधिः अम्भोनिधिः समुद्रो दुःसहश्चासौ वाडवाग्निः तम् वाडवाग्निम् वहति वहते सुकृतिनः पुण्यात्मनः अंगीकृतम् स्वीकृतम् परिपालयन्ति पालयन्ति ।

आज भी शंकर कालकूट विष को नही छोड़ते है, एव कछुआ अपनी पीठ पर पृथ्वी को धारण किये हुए है और समुद्र दु सह बाडवाग्नि को धारण किये हुए है, मत है, पुण्यात्मा पुरुष स्वीकृत किये हुए का हमेशा पालन करते हैं ।



एकोऽहमसहायोऽहं, कृशोऽहमपरिच्छद: ।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते॥ ३॥

अन्वय :–

अहम् एक: अहम् असहाय: अहम् कृश: अपरिच्छद:
एवं विधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य स्वप्ने अपि न जायते ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

अहम् एक: एकाकी असहाय नास्ति सहायो यस्य स: असहाय: सहायता रहित: कृश· दुर्बलोऽपरिच्छद: परिवारादि साधनहीन. एवम् विधा चिन्ता विचारणा मृगाणाम् इन्द्र तस्य मृगेन्द्रस्य सिंहस्य स्वप्नेऽपि स्वप्नावस्थायाम् अपि न जायते भवति ।

अर्थ :–

मैं अकेला हूं, मैं असहाय हूं, मैं दुर्बल हूं और परिवारादि साधन से रहित हूं, इस प्रकार की चिन्ता सिंह को स्वप्न में भी नहीं होती है ।

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
विपक्ष पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपय ।
तथात्याजो राम सकलमवधीद्राक्षसकुल,
क्रियासिद्धि सत्त्वे वसति महता नोपकरणे॥४॥

अन्वय –

लङ्का विजेतव्या चरण तरणि जलनिधि विपक्ष पौल-
स्त्य च रणभुवि कपय सहाया॰ तथापि राम आजौ
सकल राक्षसकुल अवधीत् महताम् सत्त्वे क्रियासिद्धिः
वसति उपकरणे न ।

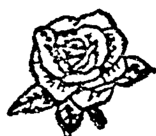
सक्षिप्त व्याख्या –

लङ्का रावणराजधानी विजेतु विजेतव्या जेतव्या जल-
स्य निधि जलनिधि, समुद्रश्चरणाभ्याम् तरितुम् योग्य॰
तरणिय पद्भ्यामेव पारकरणीय विपक्ष शत्रु पुल
स्त्यस्य गोत्रापत्य पुमान् पौलस्त्य रावण च रणस्य
भुवि रणभुवि युद्धाङ्गणे कपय वानरा सहाया सहा-
यका तथापि राम आजौ युद्धे सकल समस्त
राक्षसानाम् कुल राक्षसकुल निशाचरवशम् अवधीत

हृतवान् महतां महापुरुषाणाम् सत्त्वे शक्तौ क्रियायाः सिद्धिः क्रियासिद्धिः कार्यसाफल्यं वसति निवसति उपकरणे बाह्यसाधने न ।

अर्थ :-

लंका को जीतना है, समुद्र को पैरों से पार करना है शत्रु रावण है, और युद्ध भूमि में वन्द सहायक हैं, तथापि श्रीराम ने पूर्ण राक्षस कुल का संहार कर डाला सत्य है महापुरुषों की शक्ति में क्रिया की सिद्धि रहती है, बाह्य उपकरण में नहीं होती ।



रथस्यैक चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगा,
निरालम्बो मार्गश्चरणविकल सारथिरपि।
रविर्यात्येवान्त प्रतिदिनमपारस्य नभय,
क्रियासिद्धि. सत्त्वे वसति महता नोपकरणे॥५॥

अन्वय –

रथस्य एक चक्र सप्ततुरगा भुजगयमिता मार्गः निरालम्ब सारथी अपि चरणविकल रवि प्रतिदिन अपारस्य नभस अन्तं यति एव महता सत्त्वे क्रिया-सिद्धि वसति उपकरणे न।

संक्षिप्त व्याख्या –

रथस्य स्यन्दनस्य एक चक्रं सप्त च ते तुरगा सप्त-तुरगा सप्ताश्वा भुजगेन वासुकिना यमित्ता नियन्त्रिता· मार्ग पन्था निरालम्ब आलम्बरहित सारथी अपि चरणाभ्याम् विकल चरणविकल पादरहित तथापि रवि सूर्य प्रतिदिनं प्रत्यह नास्ति पारं यस्य स तस्य अपारस्य पाररहितस्य नभस आकाशस्य अन्त पार याति एव गच्छत्येव महता महापुरुषाणा सत्त्वे तेज-

सत्क्रियायाः सिद्धिः क्रिया सिद्धिः कार्य साफल्यं वसति तिष्ठति उपकरणे वाह्य साधने न ।

अर्थ :-

सूर्य के रथ का एक ही चक्र है और सात अश्व हैं, जो कि साप से नियन्त्रित हैं, मार्ग आलम्बल रहित है, और सारथी अरुण भी चरणहीन है, तथापि सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश में जाता ही है। महापुरुषों के तेज में क्रिया की सिद्धि रहती है, बाह्य उपकरण मे नही होती ।



कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते,

न शक्यते सत्त्वगुण प्रमार्ष्टुम् ।

अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेः,

नाधः शिखा याति कदाचिदत्र ॥६॥

अन्वय -

कदर्थितस्य अपि धैर्यवृत्तेः सत्त्वगुणः प्रमार्ष्टुम् न शक्यते । हि अत्र अधोमुखस्य कृतस्य अपि वह्नेः शिखाः कदाचित् अधो न याति ।

संस्कृत व्याख्या -

कदर्थितस्य तिरस्कृतस्य अथवा अपमानितस्य अपि धैर्यवृत्तेः धैर्ययुक्तस्य सत्त्वगुणः स्वाभाविकः सद्गुणः प्रमार्ष्टुम् नाशयितुम् न शक्यते हि अत्र जगति अस्मिन् संसारे अधोमुखस्य निम्नाननस्य कृतस्य वह्नेः अपि अग्नेः शिखा ज्वाला अधः कदाचित् कदापि न यान्ति गच्छन्ति ।

अर्थ -

तिरस्कृत अथवा अपमानित भी धैर्य वृत्तिवाले पुरुष का सद्गुण नष्ट नहीं किया जा सकता है । निश्चय ही इस लोक में नीचे मुख की हुई भी अग्नि की ज्वाला कभी भी नीचे नहीं जाती है ।

अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनः।
सुखान्यपि तथा मन्ये, दैवमत्रातिरिच्यते ॥७॥

अन्वय :–

यथा देहिनः दुःखानि अप्रार्थितानि एव आयान्ति तथा सुखानि अपि मन्ये अत्र दैवम् अति रिच्यते।

संक्षिप्त व्याख्या :–

यथा देहिनः शरीरधारिणः दुःखानि कष्टानि न प्रार्थितानि अप्रार्थितानि अनाहूतानि एव आयान्ति आगच्छन्ति मन्ये तथा सुखानि अपि आयान्ति अत्र दैवम् भाग्यं अति रिच्यते।

अर्थ :–

जिस तरह शरीर धारी के पास दुःख बिना बुलाये चले आते हैं उसी प्रकार मैं समझता हूँ कि सुख भी अपने आप चले आते है, इस विषय में दीनता करना व्यर्थ है, अर्थात् भाग्य ही प्रमुख है।

९ सत्पुरुष

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,

सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम ।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,

प्रकृति सिद्धमिद हि महात्मनाम् ।। १ ।।

अन्वय –

विपदि धैर्यम् अथ अभ्युदये क्षमा सदसि वाक् पटुता युधि विक्रम यशसि अभिरुचि च व्यसनम् हि महात्मनाम् इदम् प्रकृति-सिद्धम् ।

सन्दिष्ट व्याख्या :–

ते येषाम् महात्मनाम् महापुरुषाणाम् इदम् एतत् प्रकृत्या सिद्धम् स्वभावसिद्धम् भवति ।

अर्थ :-

विपत्ति में धैर्य रखना व अभ्युदय में क्षमा करना, सभा में वाणी की चतुराई, युद्ध में पराक्रम करना, यश की अभिरुचि होना और शास्त्रों के सुनने का शौक होना, यह महात्माओं के प्रकृति से ही सिद्ध है ।



येषां मनांसि करुणारसरञ्जितानि,
येषां वचांसि परदोषविवर्जितानि ।
येषां धनानि सकलार्थिजनाश्रितानि,
तेषां कृते वहति कूर्मपतिर्धरित्रीम् ॥२॥

अन्वय –

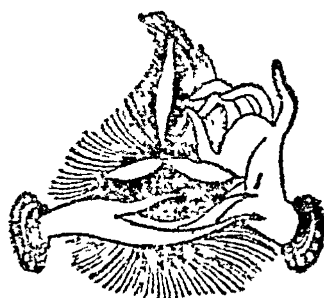
येषाम् मनांसि करुणारसरंजितानि, येषां वचांसि पर-दोषविवर्जितानि येषाम् धनानि सकलार्थिजना श्रितानि तेषाम् कृते कूर्मपतिः धरित्रीम् वहति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

येषाम् जनानाम् मनांसि चित्तानि करुणारसेन रंजितानि करुणारसरंजितानि दयार्द्राणि येषाम् नराणाम् वचांसि वाण्यः परस्य दोषेण विवर्जितानि अन्य दोष वर्णन-पराङमुखानि येषाम् मनुष्याणाम् धनानि द्रव्याणि अर्थिनाम् जनः अर्थिजनः सकलश्चासौ अर्थिजनः सकलार्थिजनः तेन आश्रितानि सकलयाचकमनोरथपूरकाणि सन्ति तेषाम् पुरुषाणाम् कृते कूर्मपतिः कमठाधिपो धरित्रीम् पृथ्वीम् वहति धारयति ।

अर्थ .-

जिनके मन करुणा रस से रंजित हैं । जिनके वचन दूसरों के दोषो को वर्णन करने से परांगमुख है और जिनका धन सम्पूर्ण याचकों का आश्रय है, उनके लिए कच्छपपति धरती को धारण करता है।



मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा,
स्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभि प्रीणयन्त ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्य,
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्त कियन्त ॥३॥

अन्वय –

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूष पूर्णा उपकारश्रेणिभिः त्रिभुवनम् प्रीणयन्त परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम् निजहृदि विकसन्त कियन्त सन्त. सन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

मनसि चेतसि वचसि वाण्याम् काये शरीरे पुण्यमेव पीयूषम् तेन पूर्णा पुण्यपीयूषपूर्णा सुकृतामृत परिपूर्णा उपकाराणाम् श्रेणिभि उपकार श्रेणिभि सततपरोपकार कार्यं त्रयाणाम् भुवनानाम् समहार त्रिभुवनम् तत् त्रिलोकम् प्रीणयन्त मोदन्त परेषाम् गुणाः तेषाम् परमाणून् परगुणपरमाणून् अन्येषाम् गुणलवान् नित्यम् सदा पर्वतीकृत्य पर्वतसमानम् गत्वा निजहृदि स्वहृदयं विकसन्त हर्षयन्त सन्त सज्जना कियन्त सन्ति विरला एव इत्यर्थं ।

अर्थ :-

मन वचन और शरीर में पुण्य रूपी अमृत से परिपूर्ण अर्थात् मन वचन और काया से पुण्य कार्य करते रहने वाले, निरन्तर उपकार के कार्यों से तीनों लोकों को प्रसन्न रखने वाले, और दूसरों के परमाणु के समान गुणों को भी पर्वत के समान मानकर सदा अपने हृदय में प्रसन्न रहने वाले सज्जन पुरुष इस संसार में कितने है। अर्थात् विरल ही हैं।



चेत सार्द्रतर वच सुमधुर दृष्टि प्रसन्नोज्ज्वला,
शक्ति क्षान्तियुता मतिः श्रितनरा श्रीर्दानदैन्यापहा ।
रूप शीलयुत श्रुत गतमद स्वामित्वमुत्सेकता,
निर्मुक्त प्रकटान्य हो नवसुधाकुण्डान्यमून्युत्तमे ।।४।।

अन्वय –

चेत सार्द्रतर वच सुमधुर दृष्टि प्रसन्नोज्ज्वला शक्ति· क्षान्तियुता मति· श्रितनया श्री दानदैन्यापहारूपं शीलयुन श्रुत गतमद स्वामित्व उत्सेकता निर्मुक्त अहो उत्तमे अमूनि नवसुधाकुण्डानि प्रकटानि ।

संक्षिप्त व्याख्या –

चेत चित्त अतिशयेन आर्द्रमति आर्द्रतर तेन सह वर्तमान सार्द्रतर दयायुक्त वच वाणी मधुरेण सह वर्तमान सुमधुर मधुर दृष्टि विलोकन प्रसन्नेन उज्ज्वला प्रसन्नोज्जवला हर्षं विकासिता शक्ति बल क्षान्त्यायुता क्षान्तियुता क्षमान्विता मति बुद्धि श्रित. आश्रितो· नयो नीति यया सा श्रितनया श्री धन दानेन दैन्य अपहरति या सा दान दैन्यापहा दानद्वारादीनतापहर्त्री

रूपं शीलेन युक्तं शीलयुक्तं सुशीलं श्रुतं शास्त्रज्ञानं गतः मदः यस्मात् तत् गतमदः मदरहितं स्वामिनः भावः स्वामीत्व प्रभुत्वं उत्सेकस्य भावः उत्सेकता तया निर्मुक्तम् उत्सेकतानिर्मुक्तं अहो ! आश्चर्यं उत्तमे सत्पुरुषे अमूनि इमानि सुधायाः कुण्डानि नव च तानि सुधाकुण्डानि नवसुधाकुण्डानि नवामृतकुण्डानि प्रकटानि प्रकटितानि सन्ति ।

अर्थ :-

चित्त दया से युक्त, वाणी अतिमधुर, दृष्टि प्रसन्नता से विकसित, शक्ति क्षमा से युक्त, बुद्धि नीति का आश्रय ली हुई, धन दान के द्वारा (दीन जनों की) दरिद्रता को दूर करने वाला रूपशीलयुक्त शास्त्रज्ञान मदरहित और प्रभुत्व गर्व से मुक्त। अहो ! सत्पुरुष में ये नो अमृत के कुण्ड प्रकट है, अर्थात् प्रत्यक्ष हैं।



नम्रत्वेनोन्नमन्त परगुणनुतिभि स्वान्गुणान् ख्यापयन्त'
पुष्णन्त स्वीयमर्थं सततकृतमहारम्भयत्ना' परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् खर्वयन्त,
सन्त साश्चर्यचर्यास्त्रिभुवनभवने वन्दनीया जयन्ति ।५।

अन्वय –

नम्रत्वेन उन्नमन्त परगुणनुनिभि स्वान् गुणान् ख्यापयन्त परार्थे सततकृतमहारम्भयत्ना स्वीय अर्थं पुष्णन्त आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् क्षान्त्या एव खर्वयन्त साश्चर्यचर्या त्रिभुनभवने वन्दनीया सन्त जयन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

नम्रस्य भाव नम्रत्व तेन नम्रत्वेन विनीततया (स्वान्) उन्नमन्त' प्रतिष्ठापयन्त परस्य अन्यस्य गुणानाम् दयादाक्षिण्यादि गुनानाम् नुतिभि नमनै स्वान् निजान् गुणान् सद्गुणान् ख्यापयन्त प्रख्यापयन्त परेषाम् अर्थे परार्थे अन्यसुखार्थ सतत निरन्तर कृत विदित महारम्भस्य विशालकार्यरम्भस्य यत्न' प्रयत्न यैस्ते सततकृतमहारम्भयत्ना स्वस्य इदम् स्वीयम् नैजम अर्थ कार्यं पुष्णन्त साधयन्त. आक्षेपेण रूक्ष

अक्षरै. मुखराणि मुखानि येषाम् ते तान् आक्षेपरूक्षाक्षर मुखरमुखान् हीनशब्दैः आक्षेपं कुर्वतः दुर्मुखान् दुर्जनान् क्षान्त्या क्षमयैव नर्दयन्त खण्डितगर्वान् कुर्वतः आश्चर्येण सह वर्तमाना साश्चर्या चर्या येपान्ते साश्चर्यचर्याः आश्चर्ययुक्तः क्रियाशीलाः त्रयाणाम् भवनानाम् समाहारः त्रिभुवन २ एव भुवनं तस्मिन् त्रिभुवनभवने त्रिभुवनरूप महासदने वन्दीतुं योग्याः वन्दनीयः वन्द्यः सन्तः सज्जना जयन्ति जयोत्कर्षे वर्तन्ते ।

अर्थ :-

नम्रता से अपने आपको उन्नत बनाते हुए, दूसरों के गुणों के प्रति आदर भावना से अपने गुणो को प्रख्यात करते हुए दूसरों के लिए निरन्तर महान् कार्यों के आरम्भ का प्रयत्न करते हुए अपने मतलब को पुष्ट करते हुए तथा आक्षेप के रूखे अक्षरों से सदा बड़-बड़ाते रहने वाले दुर्जनो को क्षमा से ही निकृष्ट बनाते हुए आश्चर्य युक्त क्रिया वाले और तीनों भुवन रूप भवन में वन्दनीय सज्जन पुरुष जयशील है। अर्थात् उनकी जय हो।

वदन प्रसादसदन सदय हृदय सुधामुचो वाच ।
करण परोपकरण येषा, केषा न ते वद्या' ! ॥ ६ ॥

अन्वय –

येषाम् वदनम् प्रसाद–सदनम् हृदयम् सदयम् सुधामुच.
वाच परोपकरणम् करणम् ते केषाम् न वन्द्या ।

सक्षिप्त व्याख्या –

येषा जनाना वदन मुख प्रसादस्य प्रसन्नताया सदन गृह हृदय मानस दयया सह वर्तमान सदय दयायुक्त वाच वाण्य सुधा मुचन्तीति सुधामुच अमृतवर्षिण्य परेषाम् अन्येषाम् उपकरण उपकारकरण करण कार्य ते सत् पुरुषा केषाम् जनना वन्दयितु योग्या वन्द्या वन्दनीया न सर्वेषा वन्दनीया इत्यर्थ ।

अर्थ –

जिन का मुख प्रसन्न, हृदय दया युक्त, वाणी अमृत को बरसाने वाली तथा दूसरो का उपकार करने का कार्य है, ऐसे वे सज्जन पुरुष किसके वन्दनीय नही है, अर्थात् सभी के वन्दनीय है ।

यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रियाः ।
धन्यास्ते त्रितये येषां, विसंवादो न विद्यते ।। ७ ।।

अन्वय :—

यथाचित्तं तथा वाचः यथा वाचः तथा क्रिया येषां त्रितये ते धन्याः विसंवादः न विद्यते ।

संक्षिप्त व्याख्या :—

यथा चित्तं चेतः तथा वाचः वाण्यः यथा वाचः वाण्यः तथा क्रियाः कर्माणि येषाम् जनानां त्रितयेजिषु ते धन्याः धन्यवादार्हाः (अस्मिन्) विसंवादो मतभेदो न विद्यते । नास्ति ।

अर्थ :—

जैसा मन वैसी वाणी वैसी क्रिया इस प्रकार जिनके ये तीनों एक हैं वे धन्य हैं इसमें कोई मत भेद नहीं है ।

१० उपकार

अस्ति जल जलराशौ, तत्कि क्षार विधीयते तेन ।
लघुरपि वर स कूपो, यत्राऽऽकण्ठ जन पिवति ।।१।।

अन्वय –

जलराशौ जल अस्ति तत् क्षार तेन कि विधीयते लघु अपि स: कूप वरं यत्र जन आकण्ठ जलम् पिवति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

जलस्य राशि तस्मिन् जलराशौ सागरे जलम् वारि अस्ति तत् क्षारम् लवणयुक्तम् तेन जलेन किम् विधीयते क्रियते लघु स्वल्पोऽपि स कूप वरम् यत्र यस्मिन् कूपे जनो मनुष्य कण्ठम् आ इति आकण्ठम् कण्ठ-पर्यन्तम् जलम् पिवति पानम् करोति ।

अर्थ –

समुद्र मे जल है, किन्तु वह खारा है उससे क्या किया जाय । छोटा होने पर भी वह कुआ अच्छा है, जिसमे कि मनुष्य कण्ठ तक जल पीता है ।

हे हेलाजितबोधिसत्त्व ! वचसां किं विस्तरैस्तोयधे !,
नास्ति त्वत्सदृशः परः परहिताधाने गृहीतव्रतः ।
तृष्यत्पान्थजनोपकार घटना वैमुख्यलब्धायशो,
भारप्रोद्वहने करोषि कृपया साहाय्यकं यन्मरोः ॥२॥

अन्वय :–

हे हेलाजितबोधिसत्त्व ! तोयधे ! वचसां विस्तरैः किम् परहिताधाने गृहीतव्रतः त्वत्सदृशः परः न अस्ति यत् तृष्यत्पाथजनोपकारघटना वैमुख्यलब्धा यशो मरोः भारप्रोद् वहने कृपया साहाय्यकं करोषि ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

हे भो ! हेलया अवज्ञयाजितः पराजितः बोधिसत्वो बुद्धोयेन सः हे हेलाजितबोधिसत्त्व तोयधे समुद्र वचसां वाणीनाम् विस्तरैः विस्तारैः किम् परेषाम् अन्येषाम् हितस्य आधाने कारणे परहिताधाने गृहीतम् व्रतम् येन सः ग्रहीतव्रतः त्वया सदृशः तवत्सदृशः त्वत्समः परः अन्यः नास्ति तृष्यन् यः पान्थो जनः तस्य उपकारस्य घटनायाः वैमुख्येन लब्धं अयोश येन सः तृष्यत्पान्थ-

जनोपकार घटना वैमुख्यलब्धयशो मरो सुमेरु पर्वत तस्य भारस्य उद्वहने साहाय्यकम् सहायताम् करोषि विदधाति ।

अन्वय -

अवज्ञा से ही बोधिसत्व को जीतने वाले हे समुद्र वाणी के विस्तार से क्या दूसरो का हित करने के व्रत को धारण किये हुए तेरे समान दूसरा नही है । क्योंकि तू प्यासे पन्थजनो के उपकार करने रूपी घटना की विमुखता से अपयश को प्राप्त करता हुआ भार को ढोने मे कृपा करके मेरु की सहायता करता है ।



अर्का: किं फलसंचयेन भवतां किं वा प्रसूनं नवैः,
किं वा भूरिलताचयेन महता गोत्रेण किं भूयसा।
येषामेकतमो बभूव स पुनर्नैवास्ति कश्चित्कुले,
छायायामुपविश्य यस्य पथिकास्तृप्तिं फलैः कुर्वते ॥४॥

अन्वय :-

अर्काः भवतां फलसञ्चयेन वा नवैः प्रसूनैः किम् भूरि-लता चयेन किंवा भूयसा महता गोत्रेण किं येषां पुनः सः एकतमः न बभूव वा कुले कश्चित् न एव अस्ति यस्य छायायां उपविश्य पथिकाः फलैः तृप्तिं कुर्वंते।

संक्षिप्त व्याख्या :-

अर्काः हे अर्कवृक्षाः भवतां युष्माकम् फलानाम् संचयेन फलसंचयेन किं वाऽथवा नवैः नवीनैः प्रसूनैः पुष्पैः किं वाथवा भूरिलतानाम् बहुविल्लरीनाम् चयेन समूहेन किं वाथवा भूयसा महता विशालेन गोत्रेण वंशेन किं न कोऽपि लाभ इत्यर्थः येषां फलादिनां एक तमः न बभूवा भवत् पुनः भूयः कुले वंशे कश्चित् नैवास्ति

यस्य छायाया उपविश्य पथिका पान्य फलं तृप्ति कुर्वते तृप्यन्तीश्वर्यं ।

अर्थ -

हे अयं वृक्षो ? आपके पत्र सचय से अथवा नये पुष्पो से क्या अथवा बहुत सी लताओ से क्या अथवा बहुत महान गोत्र से भी क्या (अर्थात्) क्या लाभ क्यो कि जिन मे से एक भी ऐसा नही हुआ फिर वृक्ष मे भी कोई ऐसा नही है, जिसकी कि छाया मे बैठकर पथिक लोग फलो से तृप्ति कर सकें ।



न चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया,

करोति भाभिः कुमुदावबोधनम् ।

स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं,

परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ॥५॥

अन्वय :-

चन्द्रमाः प्रत्युकारलिप्सया भाभिः कुमुदाव वोधनं न करोति उन्नत चेतसाम् अयम् स्वभाव एव हि परोपकारव्यसनम् जीवितम् ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

चन्द्रमाः शशी प्रत्युपकारस्य लिप्सया प्रत्युपकारलिप्सया उपकारस्य प्रतिफलेच्छया भाभिः प्रभाभिः कुमुदानाम् अवबोधनं कुमुदावबोधनं कुमुदपुष्प विकासं न करोति विधत्ते उन्नतं चेतो येषान्ते तेषामुन्नत चेतसाम् उदारचित्तानामयमेषः स्वभावः प्रकृतिरेव हि निश्चितम् परोपकारव्यसनं परोपकार करणं जीवितं जीवनम् ।

अर्थ :-

चन्द्रमा. प्रत्युपकार की इच्छा से अपनी किरणों से कुमुदों का विकसित नहीं करता है, बल्कि उन्नत चित्त वालों का यह स्वभाव ही है। निश्चय ही परोपकार करने का शौक जिसमें है वही जीवन है।

दि चन्द्रेण महोदधेरपकृत दूरेऽपि सतिष्ठता,
वृद्धो येन विवर्द्धते व्रजति च क्षीणे क्षय सागर ।
आ ज्ञात परकार्यनिश्चितधिया कोऽपि स्वभाव सता,
स्वैरङ्गै रपि येन यान्ति तनुता दृष्ट्वा पर दु खितम् ।६।

छाया -

दूरे सतिष्ठता अपि चन्द्रेण महोदधे किं उपकृतम्
येन सागरो वृद्धो विवर्द्धते च क्षीणे क्षय व्रजति आ
ज्ञात परकार्य निश्चितधिया सता कोऽपि स्वभाव येन
पर दु खितम् दृष्ट्वा स्वै अंगै अपि तनुताम् यान्ति ।

संस्कृत व्याख्या -

दूरे सतिष्ठता स्थितवता चन्द्रेण शशिना महाश्वासो
दधि तस्य महोदधे समुद्रस्य किम् उपकृतम् उप-
कार कृत येन कारणेन सागर समुद्र वृद्धो चन्द्रस्य
विवर्धते वृद्धिम् याति च क्षीणे क्षय क्षीणताम् व्रजति
गच्छति आ ज्ञाते ज्ञातम् अवगत परेषाम् कार्ये
निश्चित धीर्येषाम् ते तेषाम् परकार्ये निश्चितधिया
परोपकारबुद्धिना सता सज्जनानाम् कोऽपि निर्वचनीय

स्वभावः प्रकृतिरेव येन कारणेन परमन्यं दुःखितम् दुःखितं दृष्ट्वा विलोक्य स्वैः निजैः रंगैरवयवै रपि तनुतां क्षीणताम् यान्ति गच्छन्ति ।

अर्थ :—

दूर रहते हुए भी चन्द्रमा ने समुद्र का क्या उपकार किया था जिससे कि समुद्र उसके बढ़ने पर बढ़ता है, और क्षीण होने पर क्षीण होता है, तः जाना दूसरो के काम करने में निश्चित बुद्धि वाले सज्जनों का यह स्वभाव ही है, कि वे दूसरे को दुःखी देखकर अपने अंगो से भी क्षीण होता है ।



परोपकार सुकृतैकमूलं,

परोपकार कमलादुकूल ।

परोपकार प्रभुताविधाता,

परोपकार शिवसौख्यदाता ॥७॥

अन्वय :-

परोपकार सुकृतैकमूल परोपकार कमलानुकूलम् परोपकार प्रभुताविधाता परोपकार शिवसौख्यदाता ।

संस्कृत व्याख्या -

परोपकारः परोपकार अन्योपकार सुकृतस्य पुण्यस्य एक मूल कारणं निदान परोपकार कमलाया लक्ष्म्या अनुकूलोऽस्ति परोपकार प्रभुताया प्रभुत्वस्य विधाता कर्ता धर्ता परोपकार शिवस्य मोक्षस्य सौख्य सुखस्य दाताऽस्ति ।

अर्थ :-

परोपकार पुण्य का एक मात्र मूल है परोपकार लक्ष्मी का अनुकूल करना है, परोपकार प्रभुता का विधाता है और परोपकार शिव सुख को दिलाता है ।

११ गुण

दोषमपि गुणवति जने, दृष्ट्वा गुणरागिणो न खिद्यंते।
प्रीत्यैव शशिनि पतितं, पश्यति लोकः कलङ्कमपि ।१।

अन्वय :-

गुणरागिणः गुणवति जने दृष्ट्वा अपि न खिद्यन्ते लोकः शशिनि पतितं कलंकं अपि प्रीत्या एव पश्यति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

गुणेषु रागो येषान्ते गुणरागिण· गुणानुरक्त गुणाः सन्ति अस्मिन्निति गुणवान् तस्मिन् गुणवती गुणयुक्त जने मनुष्ये दोषं दृष्ट्वा त्रिलोक्यापि न खिद्यन्ते दुःखिनो भवन्ति लोकः संसारः शशिनि चन्द्रमसि पतितं स्थितं कलंकं लांछनमपि प्रीत्या प्रेमणैव पश्यति विलोकयति ।

अर्थ :-

गुणानुरागी मनुष्य गुणवान् पुरुष में दोष को देखकर भी खिन्न नही होते हैं, मनुष्य चन्द्रमा में स्थित कलंक को भी प्रेम से ही देखता है ।

विषमस्थितोऽपि गुणवान्, स्फुटतरमाभाति निजगुणैरेव।
जलनिधिजलमध्येऽपि हि दीप्यन्ते किं न रत्नानि ॥२॥

अन्वय -

विषमस्थितः अपि गुणवान् निजगुणैः एव स्फुटतरम् आभाति हि जलनिधि जलमध्ये किं रत्नानि न दीप्यन्ते।

संस्कृत व्याख्या -

विषमे स्थितौ विषमस्थिते स्थाने स्थितोऽपि गुणवान् गुणिजनः निजस्य स्वस्य गुणैः दयादाक्षिण्यादि गुणैरेव स्फुटतरम् स्पष्टरूपेण आभाति शोभते हि जलनिधेः समुद्रस्य जलस्य मध्ये जलमध्ये स्थितेऽपि किं रत्नानि न दीप्यन्ते प्रकाशन्ते।

अर्थ -

विषम स्थिति में स्थित होने पर भी गुणवान् मनुष्य अपने गुणों से ही स्पष्ट रूप से शोभा पाता है। समुद्र के जल में स्थित होने पर भी क्या रत्न नहीं चमकते हैं? चमकते ही हैं।

गुणा यत्र न पूज्यन्ते, का तत्र गुणिनां गतिः ।
नग्नक्षपणकग्रामे, रजकः किं करिष्यति ? ॥३॥

अन्वय :-

यत्र गुणा न पूज्यन्ते तत्र गुणिणां का गतिः नग्नक्षपणक ग्रामे रजकः किम् करिष्यति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

यत्र यस्मिन् स्थाने गुणाः दया दाक्षिण्यादि गुणाः न पूज्यन्ते अर्च्यन्ते तत्र तस्मिन् स्थाने गुणिनाम् गुणवतां का गतिः स्थितिः नग्नः क्षपणकाः यस्मिन् सः नग्नक्षपणका नग्नक्षपणकाश्चासौ ग्रामः तस्मिन् नग्नक्षपणक ग्रामे नग्नसाधु ग्रामे रजकः किं करिष्यति न किमपीत्यर्थ ।

अर्थ :-

जहां गुण नहीं पूजे जाते हैं, वहां गुणियों की क्या गति है, नग्नसाधु वाले गांव में धोबी क्या करेगा अर्थात् कुछ नहीं करेगा ।

गुण हीणा जे पुरिसा कुलस्य गव्व वहति ते मूढा ।
वनुप्पनेवि धण, गुणहीणे नत्थि टङ्कारो ॥ ४ ॥
गुणहीना ये पुरुषा, कुलस्य गर्वं वहन्ति ते मूढा ।
वशोत्पन्नेऽपि धनुषि, गुणहीने नास्ति टङ्कार ॥ ४ ॥

अन्वय –

ये पुरुषा गुणहीना ते मूढा कुलस्य गर्वं वहन्ति वशोत्पन्नेऽपि गुणहीने टकार नास्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

ये मनुष्या पुरुषा गुणं सद्गुणं हीना रहिता ते मूढा मूर्खा कुलस्य स्ववशस्य गर्वमभिमानम् वहन्ति धारयन्ति वशे मद्वशे उत्पन्न तस्मिन् अपि गुणेन मौर्व्या हीते रहिते धनुषि शरासने टकार ध्वनि नास्ति न भवती ।

अर्थ –

जो गुण हीन मनुष्य हैं, वे मूर्ख कुल का गर्व होते हैं, वश (वान) से उत्पन्न होने पर भी गुण (प्रत्यंचा) रहित धनुष मे टंकार (ध्वनि) नही होती है ।

गुणैरुत्तुङ्गतां याति, नाच्चै रासनसंस्थितः ।
सुमेरुशिखरस्थोऽपि, काकः किं गरुडायते॥५॥

अन्वय :-

गुणैः उत्तुंगतां याति उच्चैः आसनं संस्थितः न सुमेरुशिखरस्थः अपि काकः किम् गरुड़ायते ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

गुणैः सद्गुणैः (नरः) उत्तंगताम् श्रेष्ठताम् याति गच्छन्ति उच्चैः आसने संतिष्टतीति आसनसंस्थितः उच्चासनस्थः न सुमेरोः शिखरे तिष्ठतीति सुमेरु शिखरस्थः मेरुश्रृंगस्थितोऽपि काकः वायसः किम् गरुड इव आचारतीति गरुड्वत् भवति ।

अर्थ :-

मनुष्य गुणों से श्रेष्ठता को प्राप्त होता हैं । ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं । सुमेरु पर्वत की चोटी पर बैठा हुआ कोवा भी क्या गरुड़ के समान हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता है ।

जन्म स्थान न खलु महिमा वर्णनीयो न वर्णो,
दूरे शोभा वपुषि निहिता पङ्कशङ्का करोति ।
यद्यप्येव सकलसुरभिद्रव्यगन्धापहारी,
को जानीते परिमलगुण वस्तु कस्तूरिकाया ॥ ६ ॥

अन्वय –

जन्म स्थान न महिमा न खलु वर्ण. वर्णनीय न शोभा दूरे वपुषि निहिता पकशका करोति यद्यपि एव सकल-सुरभिद्रव्यगन्धापहारी वस्तु कस्तूरिकाया परिमलगुण क जानीते ।

संक्षिप्त व्याख्या –

जन्मन. स्थान जन्मस्थान उत्पत्तिस्थलम् खलु न वर न वर्ण स्पवर्णयितुम् योग्य वर्णनीयो न शोभा सुषमा दूरे दूरमस्ति वपुषि शरीरे निहिता धारिता पङ्कस्य शंकाम् पङ्कशङ्का करोति विदधाति यापि कस्तूरिका एव (तथापि) सकलानि च तानि सुरभीणि द्रव्याणि सकलसुरभिद्रव्याणि तेषाम् गन्ध मपहरतीति सकल-सुरभिद्रव्यगन्धापहारी सकलसुरभिद्रव्यगन्धापहारं वस्तु

चासौ कस्तूरिका तस्याः वस्तु कस्तूरिकायाः परिमल-
स्य गुणं सुगंधितगुणं को जानात्यवगच्छति ।

अर्थ :-

जन्म स्थान कोई महिमा शाली नहीं है, वर्ण वर्णन करने योग्य नही है, शोभा तो दूर रही, किन्तु शरीर पर धारण की हुई कीचड़ की शंका उत्पन्न करती है, यद्यपि कस्तूरिका ऐसी है, तथापि सम्पूर्ण सुगन्धित द्रव्यों के सुगंध को तिरस्कृत करने वाली कस्तूरिका के परिमल गुण को कौन जानता है ।



कौशेय क्रृमिज सुवर्णमुपलद्दूर्वापि गोलोमत॰,
पङ्कात्तामरस शशाङ्क उदधेरिन्दीवर गोमयात् ।
काष्ठादग्निरहे फणादपि मणिर्गोपित्ततो राचना,
प्राकाश्य स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना ।७।

अन्वय –

कौशेय क्रृमिज उपलाद् सुवर्ण दूर्वापि गोलोमत पङ्कात्
तामरस उदधे शशाक गोमयात् इन्दीवर काष्ठात्
अग्नि अहे फणात् अपि मणि गोपित्तत रोचना
गुणिन स्वगुणोदयेन प्राकाश्य गच्छन्ति जन्मना किम् ।

सक्षिप्त व्याख्या –

कौशेय क्रृमिभ्य॰ जातम् क्रृमिज क्षुद्रकीटजम् सुवर्ण
कनक उपलादश्मन दूर्वापि गोलोमत गोलोम्न पङ्कात्
कलमषात् तामरस कमल उदधे समुद्रात् शशाक
चन्द्र गोमयात् इन्दीवर काष्ठात् अनल मणि रत्न-
मपि अहे सर्पस्य फणात् रोचना गोरोचन गोपित्तत॰
गुणास्सन्ति येषु ते गुणिन॰ गुणवन्त स्वस्य गुणाना
उदयेन स्वगुणोदयेन प्रकाशस्य भाव प्रकाश्य प्रकाश-
ताम् गच्छन्ति यान्ति जन्मना किम् प्रयोजनम् ।

अर्थ :-

रेशम कृमि से उत्पन्न होता है, पत्थर से सुवर्ण गोलोम से दूर्वा कीचड़ से लाल कमल, समुद्र से चन्द्रमा, गोमय से इन्दीवर, काष्ठ से अग्नि, सांप के फरा से मरिण तथा गोरोचन गोपित्त से उत्पन्न होता है. ग ुरा-वान् अपने ग ुराों के उदय से प्रकासित होते है । जन्म से क्या प्रयोजन है ।



गुणेष्वेवादर कार्यं, किमाटोपैः प्रयोजनम् ? ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥ ८ ॥

अन्वय –

गुणेषु एव आदरः कार्यः आटोपैः किम् प्रयोजनम्
क्षीरविवर्जिता गावः घण्टाभिः न विक्रीयन्ते ।

संक्षिप्त व्याख्या –

गुणेषु दयादाक्षिण्यादिसद्गुणेषु एव आदरः प्रवृत्तिः
कार्यः कर्त्तव्यः आटोपैः आडम्बरैः किम् प्रयोजनम् अर्थः
क्षीरेण दुग्धेन विवर्जिताः रहिताः गावो धेनवो घण्टाभिः
घण्टानादैः न विक्रीयन्ते ।

अर्थ –

गुणों के प्रति आदर करना चाहिये दिखावों से क्या
लाभ दूध नहीं देने वाली गायें घण्टा बजाने से नहीं
बेची जा सकती हैं ।

१२ सत्संग

धनाढ्यता राजकुलेऽभिमानं,

प्रियानुकूला तनया विनीताः ।

धर्मे मतिः सज्जनसंगतिश्च,

स्वर्गाः षडेते जगतीतलान्त. ॥१॥

अन्वय :-

धनाढ्यता राजकुले अभिमानं अनुकूला प्रिया विनीताः तनया धर्मे मतिः च सज्जन संगीतः एते षट् जगती-तलान्तः स्वर्गाः ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

धनस्य वित्तस्य आढ्य्ता विपुलता राज्ञः कुले राजकुले नृपसन्निधौ अभिमानमभिमानयोग्यसत्कारः अनुकुला मनोऽनुकूलाप्रिया पत्नी विनीताः आज्ञाकारिणः तनयाः पुत्राः धर्मे पुण्यादिसत्कर्मणिमतिः बुद्धिः च सज्जना-नाम् सत्पुरुषाणाम् संगतीः संसर्गः एते इमे षट् जगती तलस्य अन्तः जगतीतलान्तः पृथ्वी लोके स्वर्गाः नाका सन्ति ।

अर्थ -

धन की सम्पन्नता, राजकुल मे अभिमान योग्य सत्कार प्राप्ति, मन के अनुकूल चलने वाली पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र, धर्म मे बुद्धि और सत्पुरुषो की सगती ये छे पृथ्वी तल पर स्वर्ग है।



नैवास्वाद्यरसायनस्य रसनात्पीयूषपानाच्च नो,
नो साम्राज्यपदाप्तितः प्रतिदिनं नो पुत्रलाभादपि ।
नैवायत्नसुरत्नलाभवशतो नैवान्यतोऽप्यस्ति सा,
या संप्रीतिरुदेति सज्जननृणां सद्भिः समं संगमात् ।२।

अन्वय :-

सद्भिः समं संगमात् सज्जननृणां या सम्प्रीतिः उदेति सा प्रतिदिनं आस्वाद्यरसायनस्य रसनात् नैव च पीयूषपनात् नो साम्राज्य पदाप्तितः नो पुत्रलाभादपि नो अयत्नसुरत्नलाभवशतः नैव अन्यतः अपि नैव अस्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

सद्भिः सज्जनैः समं सह संगमात् संगात् सज्जनाश्च ते नरः तेषाम् सज्जननृणां सज्जनपुरुषाणांया संप्रीतिः श्रेष्ठप्रेमा उदेति जायते सा सम्प्रीतिः प्रतिदिनं आस्वादितुं योग्यं आस्वाद्यमं २ च तत् रसायनं तस्य आस्वाद्यरसायनस्य स्वादिष्टरसायनस्य रसनात् स्वादात् नैव पीयूषस्य पानात् पीयूषपानात् अमृतपानात् नो संम्राजोभावः साम्राज्यं २ तत् पदं तस्य प्राप्तिः साम्राज्य-

पदाप्तित सम्राट्पद लाभात् नो पुत्रस्य लाभात् मुत-प्राप्तिलोऽपि नो अयत्नेन सुरत्नस्यलाभ· तस्यवशत· अयत्नमुरत्नलाभवशात अप्रयात्तम रत्नलाभान्नैव वा अथवा अग्यतोऽपरवस्तुलाभादपि नैवास्ति न जायते इत्यर्थ ।

अर्थ –

सज्जन पुरुषो की सगति से सभ्यपुरुषो को जो उत्तम प्रीति प्राप्त होती है, वह प्रतिदिन स्वादिष्ट रसायन के आस्वादन से नही, अमृत के पान से नही और साम्राज्यपद की प्राप्ति से नही, पुत्रलाभ से नही बिना प्रयत्न के उत्ताम रत्न की प्राप्ति से भी नही हो होती है ।



संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नालनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वातौ सागरशुक्ति संपुटगतं तज्जायते मौक्तिकं,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संवासतः संभवेत् ॥३॥

अन्वय :-

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसः नामा अपि न ज्ञायते तत् एव नलिनीपत्रस्थितं मुक्ताकारतया राजते तत् स्वातौ सागरशुक्तिसंपुटगतं मौतिकं जायते प्रायेण अधममध्यमोत्तमगुणः संवासतः संभवेत् ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

मतप्तं च अयः तस्मिन् संतप्तायसि सुतप्तलोहे संस्थितस्य तिष्ठतः पयसो जलस्य नामापि न ज्ञायते अवगम्यते तद् एव पयः नलिन्याः पत्रे स्थितं नलिनीपत्रस्थितं कमलिनीदलगतं मुक्तायाः आकारः तस्य भावः तया मुक्ताकार तया मुक्तावत् राजते शोभते तत् पयः स्नातौ स्वातिनक्षत्रे सागरस्य शुक्तौ संपुटे गतं सागरशुक्तिसंपुटगतं समुद्रशुक्तिपुटगतं मौत्तिकं मुक्ता जायते

भवति प्रायेण ग्राहुत्येन अवमश्च मध्यमश्च उत्तमश्च
अवममध्यमोत्तमगुण सवासत संगति सभवेदुद् भवेत् ।

अर्थ –

तपे हुए लोहे पर स्थित जल का नाम मात्र भी नहीं रहता है, वही जलविन्दु कमलिनी के पत्ते पर स्थित होता हुआ मोती जैसा शोभा देता है । वही स्वाति नक्षत्र मे समुद्र की सीप के सपुट मे गया हुआ मोती बन जाता है, अधिकतर अधम मध्यम उत्तम गुण समर्ग मे ही उत्पन्न होता है ।



गुणवज्जनसंसर्गाद्याति, स्वल्पोऽपि गौरवम् ।
पुष्पमालानुषङ्गेण सूत्रं शिरसि धार्यते । ४॥

अन्वय :–

गुणवज्जनसंसर्गात् स्वल्प अपि गौरवम् याति पुष्प-मालानुषंगेण सूत्रं शिरसि धार्यते ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

गुणवांश्चासौ जनः गुणवज्जनः गुणी तस्य संसर्गाद् संगात् गुणवज्जन संसर्गाद् स्वल्पोऽपि लघुरपि गौरवम् गुरुताम् याति गच्छति पुष्पाणाम् माला पुष्पमाला कुसुममाल्यं तस्याः अनुषंगेण संसर्गेण सूत्रं तन्तुः शिरसि मस्तके धार्यते धारणं क्रियते ।

अर्थ :–

गुणी मनुष्य के संसर्ग से छोटा भी गौरव को प्राप्त हो जाता है, पुष्पमाला के संसर्ग से सूत्र (डोरा) मस्तक पर धारण किया जाता है ।

उन्नतधनमध्यगत, निर्गुणमपि वहति सुरधनु शोभाम्।
तेन महद्भि सार्द्ध, सवास प्राथ्यते सद्भि ॥ ५ ॥

प्र वय –

उन्नतघनमध्यगत निर्गुण अपि सुरधनु शोभाम् वहति
तेन सद्भि महद्भि सार्द्ध सवास प्रार्थ्यते।

सक्षिप्त व्याख्या –

उन्नतश्चासौ घन तस्य मध्यगत उच्चमेघ मध्य स्थित
गणेन हीन निर्गुण मौर्वी रहित पक्षेगुणहीन अपि सुरस्य
धनु सुरधनु इन्द्रचाप शोभाम् कान्ति वहति धार-
यति तेन कारणेन सद्भि सज्जनै महद्भि महापुरुषैः
सार्द्ध सह सवास सहावस्थान प्रार्थ्यते इच्छयते।

अर्थ –

ऊँचे मेघ के बीच मे स्थित गुण (प्रत्यञ्चा) रहित
भी इन्द्रधनुष की शोभा को धारण करता है, इसलिए
सज्जनो के द्वारा महापुरुष के साथ सवास की इच्छा
की जाती है।

नीचोऽपि परिगृहीतो, महात्मभिः परमुपैति परभागम् ।
स्फटिकोपलोऽपि रक्तः कुशलैर्माणिक्यमनुकुरुते ॥ ६ ॥

अन्वय :-

महात्मभिः परिगृहीतः नीचः अपि परं परभागम् उपैति कुशलैः रक्तः स्फटिकोपलोऽपि माणिक्य मनुकुरुते ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

महान् आत्मा येषाम् ते तैः महात्माभिः सत्पुरुषैः परिगृहीतः स्वीकृतः नीचोऽपि नीचपुरुषोऽपि परं परभागम् परं श्रेष्ठत्वं उपैति प्राप्नोति कुशलैः दक्षैः रक्ता रक्तीकृतः स्फटिकस्य उपलः स्फटिकोपल. स्फटिकोऽपि माणिक्यं माणिक्यरत्नं अनुकुरुतेऽनुसरति ।

अर्थ :-

महात्माओं के द्वारा अपनाया हुआ नीच पुरुष भी परम श्रेष्ठता को प्राप्त हो जाता है, कुशल कारीगरों के द्वारा लाल किया हुआ स्फटिक भी माणिक्य रत्न जैसा लगता है ।

चन्दन शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये, शीतल साधुसगम' ॥ ७ ॥

अन्वय –

लोके चन्दन शीतल चन्दनात् अपि चन्द्रमा. शीतलः चन्द्रचन्दनयोः मध्ये साधु सगम शीतल ।

सक्षिप्त व्याख्या –

लोके ससारे चन्दन चन्दनलेपश्च शीतल चन्दनात् अपि चन्द्रमा शशी शीतल चन्द्रश्च चन्दन च ते तयो चन्द्रचन्दनयो मध्ये साधूनाम् सत्पुरुषाणा सगम. सगति शीतल ।

अर्थ –

ससार मे चन्दन शीतल है, तथा चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है और चन्दन से भी साधुपुरुषो का सग शीतल है ।

महिमानं महीयांस, सङ्गः सूते महात्मनाम् ।
मन्दाकिनीमृदो वन्द्या, स्त्रिवेदीवेदिनामपि ॥ ८ ॥

अन्वय :—

महात्मानाम् संगः महीयांसम् महिमानम्सूते मन्दाकिनीमृदः त्रिवेदिवेदिनाम् अपि वंद्याः ।

संक्षिप्त व्याख्या :—

महान् आत्मा येषाम् ते तेषाम् महात्मनाम् संगः संगतिः महीयांस मतिश्रेस्ठम् महिमानम् महिमाम् सूते प्रसूते मन्दाकिन्याः गंगायाः मृदः मृत्तिकाः त्रयाणाम् वेदानाम् समाहारः त्रिवेदीताम् विदन्तीति तेणाम् अपि वन्दितुम् योग्याः वन्द्याः वन्दनीया भवन्ति ।

अर्थ :—

महात्माओं का संग महा महिमा को जन्म देता है, गंगा की मृक्तिकाएँ तीनों वेदों के जानने वालों के भी वन्दनीय होती हैं ।

संसारकटुवृक्षस्य, द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषितरसास्वाद, संगतिः सुजने जने ॥६॥

अन्वय -

हि संसारकटुवृक्षस्य अमृतोपमे द्वे फले सुभाषितरसा-स्वाद सुजने जने संगति ।

संक्षिप्त व्याख्या -

हि निश्चयेन कटुश्चासौ वृक्ष कटुवृक्ष संसार एव कटुवृक्ष, संसार कटुवृक्ष तस्य जगत्‌रूप कटुतरोः अमृतमुपमा ययोस्ते अमृतोपमे अमृत सदृशे उभे द्वे फले सुभाषितरसास्वादः सुजने जने सज्जने संगति संग ।

अर्थ -

निश्चय ही संसार रूपी कड़वे वृक्ष के दो ही रसवाले फल हैं, एक सुभाषित रस का स्वाद और दूसरा सज्जन पुरुषों का संग ।

१३ दान

दानेन भूतानि वशीभवन्ति,

दानेय वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।

परोऽपि बन्धुत्व मुपैति दाना,

ततः पृथिव्यां प्रवरं हिदानम् ॥१॥

अन्वय :–

दानेन भूतानि वशी भवन्ति दानेन वैराणि अपि नाशम् यान्ति दानात् परः अपि बन्धुत्वं उपैति ततः पृथिव्यां दानम् प्रवरं हि ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

दानेन वितरणेन भूतानि प्राणिनः वशी भवन्ति दानेन वैराणि विरोधानि अपि नाशं क्षयम् यान्ति गच्छन्ति दानात् वितरणात् परः शत्रुरपि वन्धोर्भाव बन्धुत्वं तत् उदेति उदयति ततः तस्मात् पृथिव्यां भूमो दानं वितरणं प्रवरं ही श्रेष्ठं निश्चितं ।

अर्थ :–

दान से प्राणीमात्र वश होते हैं, दान से वैर भी नष्ट हो जाते हैं, दान से शत्रु भी बन्धु बन जाता है इस लिए पृथ्वी पर दान श्रेष्ठ है ।

दानेन चक्रित्वमुपैति जन्तु
दानेन देवाधिपतित्वमुच्चैः ।
दानेन निःशेषयशोऽभिवृद्धि-
र्दानं शिवे धारयति क्रमेण ॥२॥

अन्वय –

दानेन जन्तु चक्रित्व उपैति दानेन उच्चैः देवाधिपतित्व उपैति दानेन निःशेषयशोभिवृद्धि दानम् क्रमेण शिवे धारयति ।

संक्षिप्त व्याख्या –

दानेन वितरणेन जन्तु प्राणी चक्रित्वम् षट्खण्डराजभोगत्वम् चक्रवर्तीपदं उपैति याति दानेन वितरणेन उच्चैरुन्नतमधिपतेर्भावरधिपतित्व देवानामधिपतित्वं तीर्थङ्करत्वं उपैति उपगच्छति दानेन वितरणेन निःशेषयशोभिवृद्धि निःशेषं च तत् यश. निःशेषयश तस्य प्रभिवृद्धि निःशेषयशोभिवृद्धिः सम्पूर्णकीतिवृद्धि

भवति दानं वितरणं क्रमेण क्रमशः शिवे व मोक्षे धारयति प्रापयति ।

अर्थ :-

दान से प्राणी चक्रवर्ती के सुख को प्राप्त हो जाता है। दान से श्रेष्ठ देवताओं का स्वामी तीर्थङ्कर बन जाता है, दान से सम्पूर्ण यश की वृद्धि होती है और दान से क्रमशः मोक्ष सुख को भी प्राप्त होता है।



दान मानवदानवेन्द्रपदवीविस्तारण प्रत्यलं,
दान वासवसुन्दरीसरभसक्रीडाकलाकौशलम् ।
दान मोक्षकपाटपाटनविधौ स्फूर्जत्सुरेन्द्रायुधं,
दान विष्टपजन्तुपुण्यनिवहप्रासादसिंह ध्वज ।३।

अन्वय –

दान मानवदानवेन्द्रपदवीविस्तारण प्रति अल दान वासवसुन्दरीसरभसक्रीडाकलाकौशलम् दान मोक्षकपाटपाटनविधौ स्फूर्जत्सुरेन्द्रायुधम् दान विष्टाजन्तु पुण्यनिवहप्रासादसिंहध्वज ।

संक्षिप्त व्याख्या –

दान वितरण मानवाना दानवताञ्चतेषामिन्द्रस्य पदवी तस्या विस्तारण मानवदानवेन्द्रपदवी विस्तारणम् राज दैत्येन्द्रस्य च पद प्रदानम् प्रति अल क्षम दान वासवस्येन्द्रस्य सुन्दरी अप्सरा रभसेन सह वर्तमान सरभसनम् साग्रहम् तस्या सरभस क्रीडाया. कलाया कौशलम् क्रीडाकला कौशलमनन्त सौख्यम् प्रत्यल दानम् मोक्षस्य कपाटस्य पाटनस्य विधौ मोक्षकपाट-

पाटनविधौ शिवपदकपाटोत्पान कर्माणि सुराणाम् इन्द्रः सुरेन्द्रः तस्यायुधं स्फूर्जच्च तत् सुरेन्द्रायुधं स्फूर्जत्सुरेन्द्रायुधं दिव्यसुरेन्द्रवज्रं दान विष्टपस्य स्वर्णस्य जन्तुः प्राणी तस्य पुण्यानाम् सुकृतानाम् निवहः समूह एव प्रसादः हर्म्मं तस्यसिंहध्वजः सिंहचिन्हांकित् पताका निष्टपजन्तु पुण्यनिवह–प्रासादसिंहध्वजः अस्ति ।

अर्थ :–

दान नरेन्द्र एवं सुरेन्द्र पद को प्राप्त कराने में समर्थ है। दान इन्द्र की अप्सराओं की उत्कंठा पूर्वक काम कला कौशल की सुखानुभूति कराने वाला है। दान मोक्ष के किवाड़ को विदीर्ण करने में वज्र है और दान स्वर्ग के प्राणियो के पुण्यों के समूह रूपी प्रासाद का सिंह ध्वज है।



पात्रे धर्मनिबन्धनं तदितरे प्रोद्यद्दयाख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्द्धकं रिपुजने वैरापहारक्षमम् ।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानपूजाप्रदं
भट्टादौ च यशस्करं वितरणं न क्वाप्यहो निष्फलम् ४।

अन्वय :–

वितरणं पात्रे निबन्धनं तदितरे प्रोद्यद्दयाख्यापकं मित्रे प्रीति विवर्द्धकं रिपुजने वैरापहारक्षमं भृत्येभक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानपूजाप्रदं भट्टादौ च यशस्करं अहो वितरणं क्वापि न निष्फलम् ।

संक्षिप्त व्याख्या –

वितरणं दानं पात्रे सत्पात्रे धर्मस्य निबन्धनं धर्मनिबन्धनं सुकृतं सबन्धं तस्मात् पात्रात् इतरे भिन्ने प्रोद्यति चासौ दया तस्याः ख्यापकः प्रोद्यद्दयाख्यापकं दिव्यत् करुणा सूचकं मित्रे सख्यौ प्रीत्या स्नेहस्य वर्द्धकं वृद्धिकं रिपुजने शत्रौ वैरस्य विरोधस्य अपहारे नाशे क्षमं समर्थं वैरापहारक्षमं भृत्ये सेवके भक्त्या सेवाया भरमातिशय महावतीति प्रापयतीति भक्ति भरावहं

नराणां पतौ नरपतौ राज्ञि संमानं च पूजा च ते ते प्रद-
दातीति सन्मानपूजाप्रदं सन्मान सत्कारदायकं च भट्टादौ
विद्वज्जनादौ यशः करोतीति यशस्करं कीर्तिकरं
भवति अहो इत्याश्चर्ये दानं वितरणं क्कापि कुत्रापि
निष्फलं व्यर्थं न नास्ति।

अर्थ :-

दान सत्पात्र में धर्म से संबन्ध जोड़ता है, वह तत्
भिन्न में उज्जवल दया का ख्यापक है। मित्र में प्रीति
को बढाने वाला है, तथा शत्रुओं में वैर को नष्ट
करने मे समर्थ है, सेवक में सेवा की भावना को
बढाने वाला एवं राज्य में सम्मान व पूजा सत्कार देने
वाला है विद्वज्जन आदि में यश करने वाला है,
अहो! दान कहीं भी निष्फल नहीं है।



जीवति स जीवलोके, यस्य गृहाद्यान्ति नार्थिनो विमुखा।
भृतकवदन्यजनोऽसौ, दिनानि पूरयति कालस्य ॥५॥

अन्वय :—

जीवलोके स जीवति यस्य गृहात् अर्थिन न विमुखाः यान्ति, अन्यजन. असौ भृतकवद् कालस्य दिनानि पूरयति।

संक्षिप्त व्याख्या –

जीवानाम् लोके जीवलोके ससारे स मनुष्य जीवति स सार्थकम् जीवतीत्यर्थ यस्य गृहात् सदनात् अर्थिनो याचका विमुखा रिक्तपाणयोन यान्ति गच्छति असौ अन्यजन इतर भृतकवद् कालस्य दिनानि दिवसान् पूरयति पूर्णयति।

अर्थ –

ससार मे वह ही जीवित है, अर्थात् उसका जीवन सार्थक है, जिसके कि घर से याचक विमुख याने खाली हाथ नहीं जाते हैं, उससे भिन्न अन्य मनुष्य बोझा ढोने वाले के समान है, जो मृत्यु के दिनो को पूरा करता है।

देवानां सदनं सुवर्णशिखरी सर्वंसहा मेदिनी,
रत्नानां निलयश्च कुम्भतनयोऽनन्तस्तथाऽह्पंतिः।
स्वर्भाणुर्निशितं सुदर्शनमथो ज्येष्ठः करः केशवः,
सोऽयं श्रीपुरुषोत्तमोऽपि बलिना दानेन भिक्षु. कृतः।६।

अन्वय :-

देवानां सुवर्णशिखरी सदनं सर्वंसहा मेदिनी च रत्नानां निलयः अन्नतः कुम्भतनयः अह्पतिः स्वर्भाणुः निशितं सुदर्शनं अथो ज्येष्ठः करः केशवः सः अयम् श्री पुरुषोत्तम अपि बलिना दानेन भिक्षुः कृतः।

संक्षिप्त व्याख्या :-

देवानां सुराणाम् सुवर्णस्य कनकस्य शिखरं शृंगं यस्य तत् सुवर्णशिखरी सदनं सद्म सर्वं सहते या सा सर्वंसहा मेदनी पृथ्वी रत्नानाम् निलयः यः आलयः अनन्त अन्त रहित कुम्भस्य तनयः कुम्भतनयः समुद्रः अह्नः पतिः दिवस स्वामी स्वर्भाणुः सूर्यः राहुर्वा तथा निशितं तीक्ष्णं सुदर्शनम् सुदर्शनचक्रं केशवो विष्णु जेष्ठः करः दक्षिण हस्तः सोऽयं श्रीपुरुषोत्तमोऽपि

वामनोऽपि बलिना दैत्येन्द्रेण दानेन वितरणेन भिक्षुः याचक कृतो विहित. ।

अर्थ -

जिसके देवताओं का स्वर्ण शिखर , वाला सदन, सर्व सहा पृथ्वी रत्नों का आलय, अनन्त समुद्र तथा दिवस-पति सूर्य एव तीक्ष्ण सुदर्शन चक्र है और विष्णु जिसका दाहिना हाथ है ऐसा वह यह श्रीवामन भी बली मे दान के द्वारा भिक्षु बना दिया गया ।



दातव्यं भोक्तव्यं, सति विभवे संचयो न कर्त्तव्यः ।
पश्येह मधुकरीणां, संचितमर्थं हरन्त्यन्ये ।।७।।

अन्वय :-

विभवे सति संचयः न कर्तव्यः दातव्यम् भोक्तव्यं पश्य ? इह मधुकरीणां संचितं अर्थं अन्ये हरन्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

विभवे ऐश्वर्ये सति विद्यमाने दातव्यं देयम् भोक्तव्य मुपभोक्तव्य संचयः संकलनं न कर्तव्यो विधातव्य इह संसारे पश्यावलोकय मधुकरीणां भ्रमरीणां संचितं संचयीकृतमर्थं वितमन्येऽपरे हरन्ति गृह्णन्ति ।

अर्थ :-

विभव होने पर संचय नहीं करना चाहिये ! देना चाहिये, उपभोग करना चाहिये, इस संसार में भ्रमरियों के संचय किये हुए अर्थ या मधुर को अन्य ही हरण कर लेते हैं ।

मा मस्था क्षीयते वित्त, दीयमान कदाचन ।
कूपारामगवादीना, ददतामेव सपद. ॥८॥

अन्वय –

दीयमान वित्त कदाचन क्षीयते मा मस्था कूपारामगवादीना ददताम् एव सम्पद ?

संक्षिप्त व्याख्या –

दीयमान दत्त वित्त धन कदाचन कदा क्षीयये नश्यति इति मा मस्था अन्यत्व कूपश्च आरामश्चगावश्च कूपारामगाव कूपारामगाव आदिर्येपा कूपारामगवादीनाम् कूपवाटिकाधन्वादीना ददता दातृणामेव मपद मपत्तय भवन्ति ?

अर्थ –

दिया हुआ धन कदाचित् क्षीण हो जाता है, ऐसा मत मानो कूप बगीचा और गाय आदि के लिये धन देने वालो के ही सम्पत्तिया होती हैं ।

दृश्यं वस्तु परं न दृश्यति जगत्यन्धः पुरोऽवस्थितं,
कामान्धस्तु यदस्ति तत्परिहरन् यन्नास्ति तत्पश्यति।
कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्रकलशश्रीमल्लतापल्लवा,
नारोप्याशुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु यन्मोदते ॥१॥

अन्वय :-

जगति अन्धः पुरः अवस्थितं परं दृश्यं वस्तु न पश्यति कामान्धस्तु यद् अस्ति तत् परिहरन् यत् नास्ति तत् पश्यति यत् कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्र कलश श्रीमल्लता पल्लवान् आशुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु आरोप्य मोदते।

संक्षिप्त व्याख्या :-

जगति संसारे अन्धः पज्ञाचक्षुः पुरः सन्मुखेऽवस्थितं विद्यमानं परं श्रेष्ठं द्रष्टुं योग्यं दृश्यं दर्शनीयं वस्तु पदार्थं न पश्यत्यवलोकयति कामेनान्धः कामान्धस्तु यदस्ति तत् परिहरन्ननवलोकयन् यत् वस्तु नास्ति तत् पश्यतीक्षते यत् कुन्दं पुष्पं इन्दीवरं कमलं च पूर्णचन्द्रः शशी कलशो घटः श्रीमती चासौ लता श्रीमल्लता

शोभायुक्त वल्लरी पल्लवाश्च पत्राणि तान् कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्र कलश श्रीमल्लतापल्लवान् अशुचीना अपवित्राणा राशिपु सर्वेपु प्रियतमाया प्रियाया गात्रेष्वगेपु प्रियतमागात्रेपु आरोप्य मारोपणम् कृत्वा मोदते प्रीणयति ।

अर्थ –

ससार से अन्धा पुरुप सामने स्थित दर्शनीय श्रेष्ठ वस्तु को नही देखता है किन्तु कामान्धपुरुप तो जो है उसको न देखता हुआ, जो नही है, उसे देखता है, क्योकि वह कुन्द पुष्प नीलकमल पूर्णचन्द्र कलश शोभा युक्त लता पत्तो का अपवित्र राशि वाले प्रियतमा के अ गो मे आरोप करके प्रसन्न होता है ।



किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्य-
स्त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे ।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना -
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि? ।२।

अन्वय :—

किमु कुवलयनेत्राः नाकनार्यः न सन्ति यत् त्रिदशपतिः तापसीं अहल्यां सिषेवे हृदयतृणकुटीरे स्मराग्नौ दीप्यमाने कः पंडितः अपि उचितं वा अनुचितं वेत्ति ।

संक्षिप्त व्याख्या :—

किमु कि कुवलयानि कमलानि इव नेत्राणि नयनानि यातां ताः कुवलयनेत्राः नाकस्य स्वर्गस्य नार्योऽप्सरसो न सन्ति यत् त्रिदशपतिरिन्दः तापसीं तपस्विनी महल्यां सिषेवे सेवितवान् तृणानां कुटीरं तृणकुटीरं हृदयमेव तृणकुटीरं हृदयतृण कुटीरं तस्मिन् स्मराग्नौ कामानले दीप्यमाने प्रज्वलिते पंडितो विद्वान् उचितं योग्य मनुचित मयोग्यं वा वत्ति जानाति नेत्यर्थः ।

अर्थ -

क्या कमल के समान नेत्रवाली स्वर्ग की अप्सराए नही हैं, जो इंद्र ने तपसी अहल्या का सेवन किया हृदय-रूपी घास की कुटिया मे कामाग्नि के प्रज्वलित होने पर कोई पडित भी उचित अथवा अनुचित को जान सकता है ? अर्थात् नही ।



शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाऽक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रपवित्रिताय,
तस्मै नमो बलवते कुसुमायुधाय ॥३॥

अन्वय :-

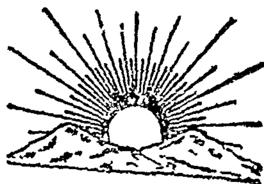
येन शम्भुस्वयम्भुहरयः हरिणेक्षणानां सततं गृहकर्मदासाः अक्रियन्त वाचां अगोचर चरित्र पवित्रितायाः तस्मै बलवते कुसुमायुधाय नमः ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

येन कामदेवेन शम्भुश्च स्वयम्भुश्च हरिश्च शम्भुस्वयम्भुहरयः शिवविरंचि विष्णवो हरिणानाम् मृगाणामीक्षणानि नयनानि यासां तासाम् हरिणेक्षणानाम् मृगनयनानाम् सततं निरन्तरं गृहस्य कर्मणः दासाः गृहकर्मदासाः सदनकार्य किंकराः अक्रियन्त कृताः वाचां वर्णानामगोचर मविषयम् चरितं तेन पवित्रिताय पवित्रिभुताय बलवते शक्तिशालिने तस्मै कुसुमानाम् आयुधंयस्य सः कुसुमायुधः तस्मै कुसुमायुधाय कामदेवाय नमः ।

अर्थ –

जिस कामदेव ने शिव ब्रह्मा और विष्णु को मृगनय-नियो के निरन्तर गृहकार्य किंकर बना दिये वाणी के अगोचप चरित्र से पवित्र भूत बलवान् उस पुष्प धन्वा कामदेव को नमस्कार है।



मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः,
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।
किंतु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कंदर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥

अन्वय :—

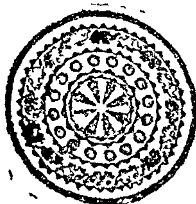
भुवि मत्तेभकुम्भदलने शूराः सन्ति केचित् प्रचण्ड मृगराजवधेः अपि दक्षाः किन्तु बलिनां पुरतः प्रसह्य ब्रवीमि कंदर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ।

संक्षिप्त व्याख्या :—

भुवि प्रथिव्यां मत्तश्चासौ इभः मत्तेभः प्रमत्तगजः तस्य कुम्भस्य गंडस्थलस्य दलने विदरणे शूराः भटाः सन्ति विद्यन्ते केचित् केचन प्रचण्डश्चासौ मृगराज प्रचण्ड मृगराजोऽति कुपित क्रुद्धसिंहः तस्य वधे हनने अपि दक्षाः कुशला सन्ति किन्तु बलिनां शक्तिमतां पुरतः सन्मुखे प्रसह्य दृढ़ पूर्वकं ब्रवीमि वदामि कन्दर्पस्य काम देवस्य दर्पस्य मानस्य दलने विदीर्णे कंदर्पदर्पदलने मनुष्याः जनाः विरलाः अल्पीयांस एव सन्ति ।

अर्थ –

पृथ्वी पर मतवाले हाथी के गण्डस्थल को विदीर्ण करने मे शूरवीर पुरुष है, एव कुछ प्रचण्ड सिंह का वध करने मे भी चतुर हैं, किन्तु मैं बलवानो के सामने दृढता पूर्वक कहता हू कि कामदेव के दर्प को दलन करने वाले विरले ही मनुष्य हैं।



अये चेतोमत्स्य ! भ्रमणमधुना यौवनजले,
त्यज स्वच्छन्दत्वं युवतिजलधौ पश्यसि न किम्? ।
तनूजालीजालं स्तनयुगलतुम्बीफलयुतं
मनोभूकैवर्त्तस्तव मरणहेतोर्भ्रमयति ।।५।।

अन्वय :-

अये चेतोमत्स्य अधुना युवति जलधौ यौवनजले स्वच्छन्दत्वं भ्रमणं त्यज किम् न पश्यसि मनोभूकैवर्तं तवमरणहेतोः स्तनयुगल तुम्बीफलयुक्तं तनूजाली जालं भ्रमयति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

अये भो चेतः एव मत्स्य तत् संबुद्धौ चेतोमत्स्य चित्त-रूपीमीन अधुना सम्प्रति युवती एव जलधिः तस्मिन् युवतिजलधौ कामिनी सागरे यौवनमेव जलं तस्मिन् यौवनजले यौवनतीरे स्वच्छन्दत्वां स्वच्छन्दत्वपूर्वकं भ्रमणं विहारं त्यज मुंच किम् न पश्यसीदृशे कामः एव कैवर्त्तः नाविकः तव मरणस्य हेतोः मरणहेतोः युगलं स्तनयोः कुचयोः युगलं एव तुम्बीफलं तेन युक्तं

सयुक्त तनू शरीर एव जालीजाल तनुजाली जाल भ्रमयति भ्राम्यति ।

अर्थ –

हे चित्तरूपी मत्स्य सप्रति तू युवती रूपी समुद्र मे यौवन रूपी जल मे स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करना छोडदे, क्या तू नही देखता है कि कामरूपी धीवर तुझे मारने के लिए दोनो स्तन रूपी तुम्बी फल से युक्त शरीर रूपी जाली के जाल को घुमा रहा है ।



दिवा पश्यति नो घूकः, काको नक्तं न पश्यति ।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो, दिवानक्तं न पश्यति ॥६॥

अन्वय :-

घूकः दिवा न पश्यति, काकः नक्तं न पश्यति कामान्धः कोऽपि अपूर्वः दिवानक्तं न पश्यति ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

घूकः उलूकः दिवा दिवसे नो पश्यति विलोकयति काको वायसो नक्तं रात्रौ न पश्यति वीक्षते कामान्धः कोऽप्यपूर्वः यो दिवा दिवसे नक्तं रात्रौ न पश्यतीक्षते ।

अर्थ :-

उल्लू दिन में नहीं देखता है और कौवा रात्रि में नहीं देखता है । किन्तु कामान्ध कोई अपूर्व ही है, जो कि दिन और रात में भी नहीं देखता है ।

समारे हयविहिणा, महिलारूवेण मडिअ पास ।
बज्झति जायमाणा, अयाणमाणादि बज्झति ।१।
ससारे हतविधिना, महिलारूपेण मडित पाश ।
बध्यन्ते जानाना, अजानाना अपि बध्यन्ते ॥१॥

अन्वय –

हतविधिना ससारे महिलारूपेण पाश. मडित. जनाना बध्यन्ते अजनाना अपि बध्यन्ते ।

सक्षिप्त व्याख्या –

हतश्चासौ विधि हतविधि तेन हतविधिना कुत्सित-विधात्रा समारे जगति महिलारूपेण युवतीरूपेण पाश बन्धन मण्डित योजित जानाना विज्ञा बध्यन्ते बन्धन प्राप्नुवन्ति अजानाना अज्ञानिनोऽपि बध्यन्ते बन्धनम् प्राप्नुवन्ति ।

अर्थ –

दुष्ट विधाता ने ससार मे स्त्रीरूप मे एक पाश बनाया जिसमे जानने वाले भी बन्ध जाते हैं और नही जानने वाले भी बध जाते है ।

मानो म्लायति पौरुषं विगलति क्लेशः समुन्मीलति,
स्थैर्यं जीर्यति धैर्यमेति विपदं गम्भीरिमा भ्रस्यति ।
बुद्धिर्भ्राम्यति न प्रशाम्यति रुजा चेतोऽधिकं ताम्यति,
क्रीड़ा क्लाम्यति कामिनीमदिरया मत्तस्य पुंसो हहा ।।२।

अन्वय :-

हहा कामिनीमदिरया मत्तस्य पंसो मानो म्लायति पौरुषं विगलति क्लेशः समुन्मीलति स्थैर्यं जीर्यति धैर्यम् एति विपदं एति गम्भीरिमा भ्रस्यति बुद्धिः भ्राम्यति रुजा चेतः न प्रशाम्यति अधिकं ताम्यति क्रीडा क्लाम्यति ।

सप्क्षित व्याख्या :-

हहा इति खेदे कामिनी एव मदिरा तया कामिनीमदिरया स्त्रीरुपीमद्येन मत्तस्योन्मत्तस्य पुंसः पुरुषस्य मानः सन्मानो म्लायति संकीर्णयति पुरुषस्य भावः पौरुपं पुरुषार्थं विगलति गलति क्लेशः दुःखं समुन्मीलति विकासमेति स्थैर्यं स्थिरता जीर्यति जीर्णं भवति धैर्यं धीरता विपदमापद मेति याति गम्भीरस्य भावः गम्भीरिमा गाम्भीर्यं भ्रस्यति नश्यति बुद्धिः

मतिभ्राम्यति विचलति चेतश्चित्त रुजा पीडया न प्रशा-म्यति शाम्यति अधिक बहु. ताम्यति सन्तप्त भवति व्रीडा लज्जा क्लाम्यति सकीर्णतामाप्नोति ।

अर्थ –

हहा खेद है कि युवति रूपी मदिरा से उन्मत्त हुए पुरुष का मान मलिन हो जाता है, पुरुषार्थ गल जाता है, क्लेश बढ जाता है, स्थिरता जीर्ण हो जाती है, धैर्य विपत्ति को प्राप्त हो जाता है, गम्भीरता नष्ट हो जाती है, बुद्धि चक्कर खाने लगती है, चित्त पीडा से शान्त नही रहता है, बल्कि अधिक सन्तप्त हो जाता है और लज्जा मुर्झा जाती है ।



स्मितेन भावेन मदेन लज्जया,
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षितैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया,
समन्तपाशं खलु बन्धनं स्त्रियः ॥३॥

अन्वय :–

स्मितेन भावेन लज्जया पराङ् मुखैः अर्द्ध कटाक्षवीक्षीतैः वचोभिः ईर्ष्या कलहेन लीलया स्त्रियः समन्त-पाशम् बन्धनम् ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

स्मितेन हास्येन भावेन अंगविक्षेपेण मदेन लज्जया त्रपया परांमुखैर्विमुखै रर्द्ध कटाक्षवीक्षितैः नेत्रभूभंग-पातै र्वचोभि र्वाणीभिः ईर्ष्यया कलहेन कलिना लीलया स्त्रियः रमण्यः समन्त पाशं बन्धनं अस्ति ।

अर्थ :–

हास्य, हावभाव, मद, लज्जा, विमुखता, कटाक्ष पूर्वक दृष्ठि से, वाणी से, ईर्ष्या युक्त, कलह से और लीला से स्त्रियां सब ओर से पाश बन्धन है ।

समोहयति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।
एता प्रविश्य सदय हृदय नाराणां
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥४॥

अन्वय -

एता वामनयना सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति नराणाम् सदय हृदय किं नाम न समाचरन्ति ।

संस्कृत व्याख्या -

एता इमा वामनयना स्त्रिय सम्मोहयन्ति मोहयन्ति मदयन्ति मादयन्ति विडम्बयन्ति विडम्बनाम् प्राप्नुवन्ति निर्भर्त्सयन्ति भर्त्सनाम कुर्वन्ति रमयन्ति रमण कारयन्ति विपादयन्ति विषादम् प्राप्नुवन्ति नराणाम् जनानाम् सदयम् हृदयम् प्रविश्य किम् नाम न समाचरन्ति ।

अर्थ -

ये वामनयना मोहित करती हैं, मदोन्मत्त करती है, विडम्बना करती है, भर्त्सना करती है, रमण कराती है, विषाद उत्पन्न करती है, इस प्रकार मनुष्यो के सदय हृदय मे प्रवेश करके क्या नही करती है, अर्थात् सब कुछ करती हैं ।

दुरितवनघनाली शोककासारपाली,
भवकमलमराली पापतोयप्रणाली ।
विकटकपटपेटी मोहभूपालचेटी,
विषयविषभुजङ्गी दुःखसारा कृशाङ्गी ॥५॥

अन्वय :–

कृशांगी दुरितवनघनाली, शोककासारपाली भवकमल-मराली, पापतोयप्रणाली विकटकपटपेटी मोहभूपाल-चेटी, विषयविषभुजंगी दुःखसारा ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

कृशं अंगं यस्याः सा कृशांगीअंगना, दुरितमेव वनं दुरितवनं तस्मै घनाली दुरितवनघनाली पापारण्यमेघ-पंक्तिः शोकः चिन्ता एव कासारः सरः तस्य पाली तटी शोककासारपाली भवसंसारः एव कमलं पंकजं तस्य मराली हंसी भवकमलमराली पापदुरितमेव तोयम् जलम् तस्य प्रणाली नालिका पापतोयप्रणाली विकटं च तत् कपटं तस्य पेटी विकटकपटपेटी भयंकर कपट-मंजूषा मोह एव भूपालः तस्य चेटी मोहभूपालचेटी

मोहनृपदासी विषय इन्द्रियाणा भोग एव विष गरल तस्य भुजगी सर्पिणी विषयविषभुजगी दुखमेव सार यस्या सा दुखसार परिणामे दुखदायिनी अस्ति।

अर्थ -

स्त्री पापरूपी वन के लिए मेघ पक्ति के समान है, शोकरूपी वन के लिए तलाव की पाल है, ससार रूपी कमल की हसनी है, पापरूपी जल की नाली है विकट कपट की पेटी और मोह रूपी राजा की दासी है, विषय रूपी विष की सर्पिणी और परिणामो से दुख देने वाली है।



सनूपुरालक्तकपादताडितो,

द्रुमोऽपि यासां विकसत्यचेतनः ।

तदङ्गसंस्पर्शरसाद्द्रवीकृतो,

विलीयते यन्न नरस्तदद्भुतम् ॥६॥

अन्वय :–

यासां सनूपुरालाक्तकपादताडितः अचेतनः द्रुमः अपि विकसति तदङ्गसपर्शरसाद् द्रवीकृतः नरः यद् न विलीयते तद् अद्भुतम् ।

संक्षिप्त व्याख्या :–

यासां रमणीनाम् नूपुरेच अलक्तकं च नूपुरालक्तानि तैः सह वर्तमानः सनूपुरालक्तक२ चासौ पादः तेन ताड़ितः सनूपुरालक्तकपाद ताड़ितः अचेतनो जड़ो द्रुमो वृक्षोऽपि विकसति तासां अंगसस्पर्शरसात् तदंग संस्पर्शरसात् द्रवीकृत द्रवीभूतो नरो मनुष्यो यत् न विलीयते विलयं गच्छति तदद्भुन माश्चर्यम् ।

अर्थ :–

जिन सुन्दरियों के नूपुर और अलक्त से युक्त पाद से ताड़ित जड़ वृक्ष भी विकसित हो जाता है उनके अंग स्पर्शरूपी इससे पिघला हुआ मनुष्य जो कि विलीन नहीं होता है यह आश्चर्य हैं !

१६ प्रकीर्ण

सव्व विलविश्र गीग्र, सव्व नट्ट विडरणा ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१॥
सर्वं गीत विलपित, सर्व नृत्य विडम्बना ।
सर्वाण्याभरणानि भारा, सर्वेकामा दु खावहा ॥१॥

अन्वय –

सर्व गीत विलपित मर्व नृत्य विडम्बना सर्वाणि आभरणानि भारा मर्वे कामा दु खावहा ।

सन्धित व्याख्या –

सर्वं सकल गीत गान विलपितम् प्रलपितम् सर्वं सम्पूर्णम् नृत्यम् विडम्बना वचना सर्वाणि सकलानि आभरणानि भूपणानि भारा सर्वे सम्पूर्णा कामाः भोगा दु खमावहन्तीति दु खावहा दु खजनका ।

अर्थ –

सब गीत विलाप के समान हैं सब नृत्य विडम्बना है, सब आभूषण भार हैं, और सभी भोग दु खदायक है ।

विकम्पते हस्तयुगं वपुः श्रीः,

प्रयाति दन्ता अपि विद्रवन्ति ।

मृत्यावुपागच्छति निर्विलम्बं

तथापि जन्तुर्विषयाभिलाषी ।।३।।

अन्वय :-

हस्तयुगं विकम्पते वपुः श्री. प्रयाति दन्ता अपि विद्रवन्ति निर्विलम्बं मृत्यौ उपागच्छति तथा अपि जन्तुः विपयाभिलापी ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

हस्तयोर्युगं हस्तयुगं करयुगलं विकम्पते वपुषः श्रीः वपुः श्रीः शरीरशोभा प्रयाति नश्यति दन्ता रदा अपि विद्रवन्ति त्रुट्यन्ति निर्विलम्बं सत्वरं मृत्यौ काले उपागच्छति निकट आगच्छति तथापि जन्तुः प्राणी विषयानिन्द्रियभोगानभिलपति इच्छति ।

अर्थ :-

दोनों हाथ कांपने लगते हैं, शरीर की शोभा छूमन्तर हो जाती है, दांत गिर जाते हैं, और मृत्यु शीघ्र ही आने वाली है, तो भी यह प्राणी विपयों की ही इच्छा करता है ।

अविदितपरमानन्दो,
वदति जनो विषय एव रमणीयः ।
तिलतैलमेव मिष्टं,
येन न दृष्ट घृत क्वापि ॥४॥

अन्वय –

अविदितपरमानन्द जन. विषय एव रमणीय वदति येन क्वापि घृत न दृष्ट स. तिलतैल एव मिष्ट मन्यते ।

संक्षिप्त व्याख्या –

न विदितोऽविदितोऽज्ञात· परमानन्द येन स एव भूतो यो जनो नरो विषय इन्द्रियभोग एव रमणीय सुन्दर इति मन्यते येन पुरुषेण क्वापि कुत्रापि घृत आज्य न दृष्ट विलोकित तिलाना तैल तिलतैलमेव मिष्ट मधुर मन्यते ।

अर्थ –

जिसको परमानन्द का ज्ञान नही है, वह विषय सुख को ही रमणीय समझता है, जिस मनुष्य ने कभी घी नहीं देखा वह तिल तैल को ही मिठा मानता है ।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्माणि यः प्रवर्त्तते,
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।।५।।

अन्वय :–

रागिणां वने अपि दोपः प्रभवन्ति गृहे अपि पञ्चेन्दिय निग्रहः तपः यः अकुत्सिते कर्माणि प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।

संप्क्षित व्याख्या :–

रागिणां विपयानुरागिणाम् वनेऽरण्येऽपि दोषाः प्रभवन्ति भवन्ति गृहे सदनेऽपि पंचानामिन्दियाणाम् निग्रहः पंचेन्द्रियवशिकरणं तपः तपस्या भवतु मर्हति यः जनः नकुत्सितेऽकुत्सिते अनिन्द्ये कर्मणि कार्ये प्रवर्त्तते प्रवृत्ति कुरुते निवृत्तः रागः विषयानुरागः यस्य तस्य गृहम् सदनम् तपोवनम् ।

अर्थ :–

रागियों के वन में भी दोष उत्पन्न हो जाते है, और घर में भी पंचेन्द्रिय निग्रह रूपी तप हो सकता है जो अनिन्दित कार्य में प्रवृत होता है, उस राग रहित मनुष्य के घर भी तपोवन है ।

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः,
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः ।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं सेवकाः,
सर्वे स्वार्थवशाज्जनोऽभिरमते नो कस्य को वल्लभः।७।

अन्वय :-

विहगाः क्षीणफलं वृक्षं त्यजन्ति सारसाः सरः शुष्कं त्यजन्ति मधुपाः पर्युषितं पुष्पं त्यजन्ति मृगाः दग्धं वनान्तं त्यजन्ति गणिका निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति सेवकाः भ्रष्टं नृपं त्यजन्ति सर्वे स्वार्थवशात् जनः अभिरमते न कस्य कः वल्लभः ।

संक्षिप्त व्याख्या :-

विहगाः पक्षिणः क्षीणानि शुष्काणि फलानि यस्य सः तं क्षीणफलं वृक्षं तरुं त्यजन्ति मुंचन्ति सारसाः सारसपक्षिणः शुष्कं जलरहितं सरः सरोवरं त्यजन्ति मधुपा भ्रमराः पर्युषितं गंधहीनं पुष्पं कुसुमं त्यजन्ति मृगाः हरिणाः दग्धं वनान्तं वनभागं त्यजन्ति गणिका वेश्या निर्द्रव्यम् धनहीनं पुरुषं मानवं त्यजन्ति सेवकाः भृत्याः

भ्रष्ट राज्यहीन नृप राजान त्यजन्ति सर्वे जना स्वार्थ-वशादभिरमते आसक्ति करते क कस्य वल्लभ प्रियः कोऽपि नास्ति ।

अर्थ -

पक्षी पत्र रहित वृक्ष को, सारस सूखे सरोवर को छोड देते है, भँवरे गंध रहित पुष्प को, मृग दग्ध वन प्रदेश को छोड देते हैं, वैश्या द्रव्य रहित पुरुष को और सेवक राज्य भ्रष्ट राजा को छोड देते हैं सभी मनुष्य स्वार्थवश प्रेम करते हैं कोई किसी का प्यारा नही है।

